सचित्र स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य

प्रकाशक की ओर से—

आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक उन्नतिशील राष्ट्र की सुदृढ़ नींव है वहां के स्वस्थ नागरिक। आज भारत पञ्चवर्षीय योजनाओं द्वारा विकासोन्मुख है स्वस्थ नागरिक ही उसकी सर्वप्रथम आवश्यकता है। शत्रु चीन को परास्त करने के लिये स्वस्थ नागरिक ही भारत को सबल बना सकते हैं। समाज में स्वस्थ नागरिक का अपना एक पृथक व्यक्तित्व है।

आज विद्यापीठ विद्यालय विद्यार्थियों को केवल उनके विषय सम्बन्धी ज्ञान तक ही सीमित रखते हैं। अतः वे स्वास्थ्य और अनुशासन हीन ही रहते हैं। जहां भारत में कृषि औद्योगिक, वैज्ञानिक शिक्षा व कला कौशल आदि सभी का विकास होरहा है वहां स्वास्थ्य एवं अनुशासन के क्षेत्र में भी विकास होना आवश्यक है। अतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु यह स्वास्थ्य पुस्तकें प्रकाशित की हैं। यह समस्त पुस्तकें इतनी उपयोगी हैं कि देश की समस्त व्यायाम प्रशिक्षणशालाओं, पुस्तकालयों, वाचनालयों विद्यालयों, ग्राम पंचायतों तथा समाज कल्याण केन्द्रों द्वारा अपनाई गई हैं। विद्यार्थियों, नवयुवकों, नवयुवतियों एवं देश के प्रत्येक नागरिकों को इस ओर पग बढ़ाना आवश्यक है। निश्चय ही इन पुस्तकों द्वारा समाज में एक नवीन क्रान्ति उत्पन्न होगी और देशवासी अपने स्वास्थ्य एवं चरित्र का उत्थान करेंगे।

—प्रकाशक

सचित्र स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य
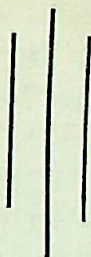
लेखक---

स्वामी अखंडानन्द जी

प्रकाशक---

हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा।

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तकालय,

मथुरा।

※

लेखक—

स्वामी अखंडानन्द

※

मुद्रक—

हिन्दी पुस्तकालय,

मथुरा।

※

※

मूल्य चार रुपया

स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य का महत्व

आजकल के युवकों के निर्बल होने का एक मात्र कारण यह है कि सभी के दिमाग में स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य का कोई महत्व नहीं रहा है। इसीसे रोगों की उत्पत्ति होती है। आजकल अधिकाँश व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रसित हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह रोगों से मुक्त होने के लिए स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य का सहारा ले। अच्छे स्वास्थ्य से शरीर हल्का और सुदृढ़ बनता है, पाचन शक्ति प्रबल हो जाती है। बुढ़ापे का शीघ्र आक्रमण नहीं होता। यदि शरीर स्वस्थ्य है तो सभी अपने हैं और सभी कार्य सरलता पूर्वक हो जाते हैं। यदि निर्बल है तो स्त्री भी मुख मोड़ लेती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का प्रधान कर्तव्य है कि वह अपने स्वास्थ्यको बनाये रखे।

प्राणी का स्वास्थ्य उत्तम होना ही उसके जीवन का सुख है। उत्तम स्वास्थ्य से अभिप्राय है शरीर निरोग हो, बुद्धि बल, तेज आदि का समुचित मात्रा में प्रादुर्भाव हो।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धन का महत्व है और धन का उद्गम परिश्रम से है। परिश्रम के लिये मनुष्य का स्वस्थ्य होना आवश्यक है। अतः स्वास्थ्य की महत्ता सर्वोपरि है।

स्वास्थ्य का महत्व जानने के पश्चात् भी जो उसको प्राप्त करने में ढील करता है उससे अधिक हतभाग्य दूसरा कोई नहीं। स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये प्राणी को निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये तथा सदव सजग रहना चाहिये।

वीर्य नाश मृत्यु है। वीर्य रक्षण ही जीवन है। जो मनुष्य अपने वीर्य की रक्षा करने में सदैव सतर्क रहता है वीर्य उसके शरीर को स्फूर्ति एवं शक्ति प्रदान करता है और उसके मनोरथों को पूर्ण करने में सदैव सहायक होता है। वीर्यवान पुरुष संसार में अजेय होता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब से मानव का सृष्टि

में निर्माण हुआ है तभी से वीर्यवान पुरुष संसार में श्रेष्ठ रहे हैं। वीर्य की रक्षा करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। पुराण का उल्लेख है—

सिद्धे विन्दौ महाराने कि न सिद्धयति भूतले।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येताहशोऽभवत् ॥

इसका अर्थ है कि जिस वीर्य के धारण करने से समस्त ब्रह्माण्ड में (मैं) महामन्त्रित हुआ हूं उसी वीर्य विन्दु को धारण करने से प्राणी संसार में ऐसा कौनसा कार्य है जिसे नहीं कर सकता है।

वीर्य का सीधा प्रभाव मस्तिष्क से है। मस्तिष्क बुद्धि का केन्द्र है। उसके द्वारा हो विचारों एवं भावनाओं का जन्म होता है। शरीर के हर कार्य का संचालन करने के लिये मस्तिष्क की शक्ति खर्च होती रहती है। निदान उसके द्वारा क्षय होने वाली शक्ति उसे वीर्य के द्वारा ही प्राप्त होती है। यदि वीर्य का शरीर में संरक्षण नहीं किया जाता है तो मस्तिष्क को शक्ति प्राप्त नहीं हो पाती और वह शक्ति के अभाव में पूरी तरह से काम करने में सफल नहीं हो पाता है।

ब्रह्मचर्य पालन पर हर संस्कृति ने पूर्ण जोर दिया है। ऐसा क्यों है ? यदि इस विषय पर मनन किया जाये और ब्रह्मचर्य के गुणों पर पूर्ण ध्यान दिया जाये तो सहज ही हम उसके महत्व को समझ सकते हैं।

ब्रह्मचर्य की महत्ता वीर्य रक्षण के कारण ही अद्वितीय है क्योंकि वीर्य हो प्राणी की शक्ति है। वह मानव शरीर को संचालन करने वाली तेजस्वी किरण है। इसके धारण करने से ही प्राणी संसार में रहकर अपने समस्त कार्यों को कर सकने में पूरी तरह सफल होता है।

ब्रह्मचर्य पालन पर हर संस्कृति ने पूर्ण जोर दिया है।

ऐसा क्यों है ? यदि इस विषय पर मनन किया जाये तो सहज ही हम उसके महत्व की समझ सकते हैं ।

ब्रह्मचर्य को महत्ता वीर्य रक्षण के कारण ही अद्वितीय है क्योंकि वीर्य ही प्राणी की शक्ति है। वह मानव शरीर को संचालन करने से ही प्राणी संसार में रहकर अपने समस्त कार्यों को कर सकने में पूरी तरह सफल होता है ।

ब्रह्मचर्य ज्ञान है। ब्रह्मचर्य के पालन करने से मनुष्य के मस्तिष्क को शक्ति मिलती है और उसी शक्ति की प्रेरणा से वह परिश्रम करता है। उसके इस परिश्रम का ही यह फल होता है कि वह अपनी तथा अपने परिवार की आजीविका चला सके तथा अपने जोवन को सुखमय बनाने के हेतु पूर्ण अर्थ व्यवस्था कर सके। स्वस्थ मस्तिष्क में सुन्दर विचार का जन्म होता है। स्वस्थ मस्तिष्क के द्वारा ही प्राणी ज्ञान प्राप्त करने में रुचि लेता है और उस ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य अपनी समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है वह वैभव प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्य बल है सृष्टि के हर प्राणी को इस ससार में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये बल अथवा शक्ति की आवश्यकता होती है। प्रकृति का नियम है कि वह कमजोर को नष्ट कर देती है और और बलवान को प्रश्रय देती है । बली वही होता है जिसके शरीर में वीर्य होता है हम सभी जानते हैं कि वीर्य हमारे शरीर में उसी प्रकार रमण करता है जैसे पुष्पों में सुगन्ध वास करता है। जब किसी भी फूल के अन्दर से उसकी सुगन्ध को निकाल लिया जाता है तो उस फूल का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी तरह जब तक मनुष्य के शरीर में वीर्य का निवास उचित मात्रा में रहता है तब तक वह बली, ओजस्वी एवं तेजस्वी रहता है। वीर्य को रक्षा तभी हो सकती है जबकि मनुष्य ब्रह्मचर्य का भली प्रकार पालन करे।

ब्रह्मचय आत्मा है। हम सभी जानते है कि हमारे शरीर

में एक ऐसी ज्योति निवास करती है जिसके ही कारण मनुष्य को अपने शरीर आदि का पूर्ण ज्ञान रहता है। वह ज्योति क्या है ? उसे हम आत्मा के नाम से भी पुकारते हैं। आत्मा की ज्योति वास्तव में वीर्य का अस्तित्व है। जिस मनुष्य का शरीर जितनी अधिक मात्रा में वीर्य को धारण किए रहता है उतनी ही प्रबल उसकी आत्मा गिनी जाती है। जो वीर्य को क्षय करता है वह उतना ही कायर और भयभीत रहता है। उसकी आत्मा उतनी ही कमजोर अथवा गिरी हुई होती है।

ब्रह्मचर्य जीवन है। वीर्य के द्वारा जब इस मानव शरीर को शक्ति प्रदान होती है तो हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वीर्य रक्षा ही में मनुष्य का जीवन निहित है। ब्रह्मचर्य के द्वारा मनुष्य पूर्णतया वीर्य की रक्षा करने में समर्थ होता है और वह अपने जीवन का पूर्ण आनन्द उठा सकता है। समर्थ ही संसार में सच्चा आनन्द पाता है।

पंचतत्व के द्वारा ही समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है। इतना जानते हुए भी हम उन तत्वों को साकार रूप में नहीं देख पाते। अपनी इस अयोग्यता को हम माया कहते हैं। माया के आवरण को हटाकर स्पष्ट रूप से सृष्टि के दर्शन करने के लिए मनुष्य को ब्रह्म विद्या का आश्रय ग्रहण करना होता है। यही ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्य है। निदान इस दृष्टिकोण से भी हमें वीर्य की रक्षा परम आवश्यकीय ही नहीं वरन् अनिवार्य है।

प्रस्तुत पुस्तक में बड़ी सावधानी के साथ ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य और आसनों की व्याख्या की गई है भाषा की सरलता और चित्रों की उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया गया है। आशा यही है कि पाठक इस पुस्तक का यथेष्ठ लाभ उठा सकते हैं।

—प्रमोदविहारी

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

———

* सचित्र *

स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य

——*:*——

ब्रह्मचर्य क्या है ?

ब्रह्मचर्य का अर्थ है सुखी जीवन की प्राप्ति के लिये उद्योग ब्रह्मचर्य के द्वारा मनुष्य अपने मन. कर्म आदि पर अंकुश रखने में समर्थ होता है और अपने आत्मबल के द्वारा सहज ही अपने मनोवाँछित फल को प्राप्त करता है।

जिस प्रकार मोटर चलाये रखने के लिए पैट्रोल को आवश्यकता होती है उसी प्रकार शरीर को जीवित रखने के लिये वीर्य की जरूरत है। बीर्य शरीर का वह तेजोमय पुन्ज है जिसके द्वारा बल, बुद्धि व स्फुर्ति प्राप्त होती है।

हमारे शरीर में अन्य तत्वों के साथ रक्त भी है। यह सदैव हमारी नसों द्वारा बहता हुआ प्रत्येक अङ्ग को शक्ति प्रदान करता रहता है। इस रक्त के मन्थनसे वीर्य की उत्पत्ति होतीहै। यों कहना चाहिये कि जिस प्रकार दूध में मक्खन रहता है उसी प्रकार रक्त में बीर्य रहता है। दूध में से मक्खन को निकाल लिया जावे तो दूध बेकार हो जाता है उसी प्रकार जब रक्त में से बीर्य निकल जाता है तब रक्त भी व्यर्थ हो जाता है।

अतः शरीर को स्वस्थ तथा रक्त को शक्तिपूर्ण रखने के

लिए यह आवश्यक है कि बीर्य को शरीर में सुरक्षित रखा जाये ।

वीर्य के रक्षण ही को ब्रह्मचर्य कहते हैं । वीर्य के महत्व को हमारे ऋषि-मुनि सनातन काल से समझते चले आ रहे हैं । उन्होंने हमारी जीवन अवधि को क्रमानुसार बांटने में ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण महत्व दिया है । सात वर्ष की आयु से लेकर २१ वर्ष तक की आयु तक बालक को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की व्यवस्था की है ।

यह महत्व आज यद्यपि उसी रूप में नहीं जाना जारहा है परन्तु समय की पुकार और परिस्थितियों की जटिलता ने हमें मजबूर कर दिया है कि हम इस महत्व को पुनः समझें । यदि हमने समय से पहले ब्रह्मचर्य के महत्व को नहीं समझा तो यह सम्भव है कि हमारी आगामी पीढ़ियों को इस धरातल से लोप हो जाना पड़े । लघु आयु, लघु शरीर, अकाल मृत्यु के द्वारा मानव समाज सदैव के लिये लोप हो जाए । ब्रह्मचर्य के महत्व को जानने के लिए आप इस पुस्तक का अध्ययन करें ।

वीर्य

"सिद्धे विन्दौ महाराने किं न सिद्धयति भूतले ।
यस्य प्रसादात्महिमा भमाप्येतादृशोऽभवन् ।।"

जिस महामहिम विन्दु को सिद्ध करने के कारण प्राणी समस्त भुवनों में प्रख्यात तथा गौरवान्वित होता है उसे धारण करके ऐसा कौन सा काम इस धरातल पर शेष रह जाता है जिसे नहीं किया जा सकता है ।

वीर्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने से पहले हमें

अपने शरीर की रचना और उसके तत्वों को देखना चाहिए। हम सभी जानते हैं कि समारा शरीर एक यन्त्र के समान है जिसे प्रकृति नियंत्रित करती रहती है और उसकी इन क्रियाओं के कारण इसका पोषण होता रहता है।

शरीर रचना को समझने के बाद ही हम वीर्य के महत्व को समझ सकते हैं। मानव शरीर प्रारम्भ में बारह चौदह इंच के आकार में पृथ्वी पर आता है। वह प्रकृति के कुशल निर्देशन द्वारा ही बीस वर्ष को आयु तक ५–६ फीट लम्बा हो जाता है। उसके अङ्ग विकसित और पुष्ट हो जाते हैं जीर्णावस्था तक शरीर अपनी उस अवस्था में रहता है। वृद्धावस्था जब आरम्भ होती है शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग अपना काम त्याग देते हैं। धीरे-धीरे वे कमजोर होने लगते हैं। जब उनकी शक्ति पूर्णतया नष्ट हो जाती है तो प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है।

वीर्य शरीर के रक्त से उत्पन्न होने वाला अमूल्य रस है। जीवन को यथाक्रम चलाये रखने के लिये प्राणी जो भी भोजन ग्रहण करता है उस भोजन से रक्त बनता है रक्त शरीर को जीवन प्रदान करता है। रक्त के द्वारा शरीर का अङ्ग-प्रत्यङ्ग सजीव रहता है शरीर में स्फुर्ति रहती है। इसी रक्त में जो मक्खन रूपी अमृत होता है उसे वीर्य कहते हैं।

इसी बात को दूसरी तरह से इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि प्राणी जो भी आहार ग्रहण करता है उस आहार के पुष्टि कारक तत्वों से रक्त का जन्म होता है। जिस प्रकार गाय जो आहार ग्रहण करती है उससे गाय के शरीर में पहले रक्त बनता है। उस रक्त से गाय के थनों में दूध आता है। दूध एक पदार्थ है जो मानव शरीर के लिए परम पौष्टिक तत्वों से युक्त होता है इस दूध में कई तत्व होते हैं। मक्खन, पानी

तथा श्वेत तत्व। पानी का अंश अधिक होता है। इसी कारण दूध तरल होता है। जल और श्वेत तत्व को अलग करके मक्खन निकाला जाता है। मक्खन निकल जाने बाद दूध में कुछ भी शेष नहीं रहता। जब वह अशक्त पदार्थ रह जाता है। उसका ओज ही मक्खन है।

जिस प्रकार दूध में मक्खन का निवास रहता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में रहने वाले रक्त में भी वीर्य रहता है।
वीर्य मनुष्य के शरीर में रहने वाले रक्त का मक्खन है। इसी कारण उसे ओज कहते हैं। उसे बिन्दु कहते हैं और उसकी अपार महिमा का गुणगान करते रहते हैं।

जब तक मनुष्य की अवस्था दस-बारह वर्ष तक रहती है तब तक प्रकृति स्वयं उसके शरीर की देख-भाल करती है। वह शरीर का संचालन करती है। बा रक्षण करती है। उसने प्रारम्भ ही से शरीर में इस प्रकार की व्यवस्था बना रखी है कि वीर्य शरीर के किसी भी अङ्ग के द्वारा बाहर न जा सके। बाल्यावस्थामें शरीर का ताप प्रकृति के द्वारा पूरी तरह नियंत्रित रहता है। उसका उपयोग शरीर के निर्माण में होता रहता है।

परन्तु जब जवानी प्रारम्भ होती है और शरीर के निर्माण का कार्य पूर्ण हो जाता है तो शरीर में गर्मी बढ़ने लगती है। इस शारीरिक गर्मी के बढ़ने से वीर्य अपना रूप प्रकट करने लगता है। यदि उस समय तनिक सावधानी से काम लिया जाये और वीर्य को उचित मात्रा में उचित दिशा में मोड़ दिया जाये तो उससे मस्तिष्क को बल मिलता। बुद्धि में तीक्ष्णता प्राप्त होती है।

यदि जवानी की अवस्था में वीर्य का सदुपयोग नहीं किया

जाता है तो वीर्य अपने स्थान से च्युत हो जाता है। शरीर को नष्ट करने लगता है। वीर्य ओज है। शक्ति है। वह प्राकृतिक अनुभूति है जिसके द्वारा मानव शरीर आरोग्य रहता है। उससे शरीर को बल मिलता है।

वीर्य का स्वरूप

संसार के समस्त सत्यांश वाले तत्व निर्मल रहते हैं। निर्मल अर्थात् सात्विक तत्वों का यथार्थ स्वरूप धवल अर्थात् श्वेत है। मक्खन का रङ्ग श्वेत होता है। इसी प्रकार वीर्य का रङ्ग भी श्वेत होता है।

वीर्य श्वेत रङ्ग का वह लसदार पदार्थ है जिसमें शीघ्र ही जमने की शक्ति रहती है। उसमें शुद्ध शहद की सी सुगन्ध प्राप्त होती है। शुद्ध रक्त से उत्पन्न वीर्य पृथ्वी अथवा जल में पड़ते ही जम जाता है। उसमें भार होता है।

जिस प्रकार दूध को मथने के बाद मक्खन ऊपर तैरने लगता है उसी प्रकार मानव शरीर के रक्त को मथने के बाद ही वीर्य का जन्म होता है। शरीर में रक्त को गर्मी अर्थात् कामुक चेष्टाओं द्वारा मथा जाता है। तब वीर्यपात होता है।

वीर्य का वास्तविक स्वरूप दिये में पड़े तेल के समान होता है। यदि किसी दीपक में बत्ती डाल कर तेल भर दिया जाये और बत्ती को प्रज्जलित कर दिया जाए तो वह बत्ती प्रकाश देने के साथ-साथ तेल को भी सोखती जायेगी - जब तक दीपक में तेल रहेगा और बत्ती तेल से गीली रहेगी तब तक वह जलती रहेगी उसमें प्रकाश रहेगा।

उसी तरह वीर्य दीपक में भरे तेल के समान है। वीर्य से

मनुष्य के शरीर को बल मिलता रहता है। उसमें शक्ति रहती है। शक्ति से वह कार्य रत रहता है। जब वीर्य का ह्रास हो जाता है तो शरीर क्षय हो जाता है। मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है।

वीर्य का स्वरूप अदृष्टा है। वह शरीर के रक्त में रमा रहता है। जिस तरह दूध में मक्खन रहते हुए भी हम उसे नहीं देख पाते हैं उसी प्रकार रक्त में वीर्य को स्पष्ट रूप में नहीं देखा जा सकता है। वीर्य को उसी समय देखा जा सकता है जब वह रक्त से विलग हो जाता हैं। विलग होने पर ही उसका स्वरूप स्पष्ट होता है।

शारीरिक रचना और वीर्य

आचार्य सुश्रुत ने लिखा है:—

"रसाद्रक्तं ततो मासं, यांसान्मेदा प्रजायते।
मेदस्यास्थि ततो मज्जा, मज्जायाः शुक्रसंभवः ॥"

आहार अर्थात् भोजन के रस द्वारा रक्त बनता है। रक्त से माँस को उत्पत्ति होती है। माँस से चरबी अर्थात् मेद उत्पन्न होती है। मेद अर्थात् चर्बी से अस्थियां अर्थात् हड्डियों की उत्पत्ति होती है। हड्डियों से मज्जा और इस मज्जा से वीर्य बनता है।

हम सभी जानते हैं कि मानव का जन्म वीर्य और रज के सम्मिश्रण से तैयार होता है। पिता का वीर्य जब माता के रज के साथ मिलकर माता के गर्भ में आता है तो बालक की उत्पत्ति होती है।

माता के गर्भ में यह वीर्य-रज का मिश्रित तत्व दीर्घकाल तक उदर की गर्मी के द्वारा पकता रहता है। उस गर्मी से पकने पर-एक रस तैयार होता है और धीरे धीरे वह रस एक पिंड का आकार ग्रहण कर लेता है। यह पिंड उस रस का जमा हुआ स्वरूप होता है। यह जमा हुआ रस एक लोथड़े के समान प्रतीत होता है। इसी को मांस पिंड कहते हैं। वीर्य और रज के मिश्रण से जो रस उत्पन्न हुआ वह रक्त होता है और उसी रक्त के द्वारा मांस पिण्ड का जन्म हुआ।

समयानुसार माता के शरीर की गर्मी से वह मांसपिण्ड विकार रहित होता रहता है। प्रकृति के नियंत्रण में रहकर उस मांस पिण्ड में अन्य वस्तुऐं स्वतः उत्पन्न होने लगती हैं। मांस से चर्बी उत्पन्न होती है। चर्बी उत्पन्न हो जाने के बाद हड्डियां बनती हैं। हड्डियों के बाद मज्जा उत्पन्न होती है।

माता के गर्भ में हड्डियां तक बनने में उस वीर्य-रज के मिश्रण को छः मास अर्थात् १८० दिन का समय लगता है। उसके बाद जब मज्जा का निर्माण हो जाता है तो उससे वीर्य उत्पन्न होता है। वीर्य के उत्पन्न होते ही मांस पिण्ड में गति आजाती है। वीर्य ही वह ओजस्वनी शक्ति है जिसे हम प्राण कहते हैं।

प्राण आते ही उस मांस पिंड की अपनी अलग आवश्यकताऐं उत्पन्न होने लगती हैं। मांस पिण्ड की नाभि में एक नाल होती है। इस नाल का सम्बन्ध माता के आमाशय से होता है। प्रारम्भ में वह मास पिण्ड माता के शरीर की गर्मी तथा उसके शरीर में रहने वाले तत्वों को लेकर ही जीवित रहता रहा और उसका निर्माण होता रहा। परन्तु जब उसमें प्राण का संचार हो गया तो वह नाल के द्वारा माता के आहार में से

अपनी आवश्यकतानुसार रस खींचने लगा। इसी रस के द्वारा जब शरीर के समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों का निर्माण हो जाता है और बालक यथोचित आकृति ग्रहण कर लेता है तो वह बाहर आने को व्याकुल होता है।

जब वह माता के गर्भ से निकल कर पृथ्वी पर आता है तो उसके शरीर के सभी अङ्ग यथा स्थान सही होते हैं। उसे स्वर मिलता है। वह रोता है उसकी नाल काटदी जाती है तो उसे आहार की खोज में मुँह चलाना होता है। धीरे-धीरे वह दूध चूसना सीख जाता है।

कहने का तात्पर्य यही है कि वीर्य के द्वारा ही मानव शरीर के निर्माण का बीज रखा जाता है। वीर्य जब उस मांस पिंड में उत्पन्न हो जाता है तो उसमें प्राण प्रतिष्ठा होती है। वीर्य ही वह ओज है जिसे शरीर का निर्माता कहा जाता है।

प्राकृतिक अवस्थाऐं

शरीर के निर्माण में जिन अवस्थाओं का वर्णन किया है वे संख्या में सात हैः—

१—रस

२—रक्त

३—मांस

४—मेद या चर्बी

५—हड्डियां

६—मज्जा

७—वीर्य

अर्थात् हमें यह स्पष्ट हो गया है कि रस से वीर्य बनने में छः

अवस्थाऐं आती हैं। शरीर विज्ञान के शास्त्रियों का मत है कि इनमें से प्रत्येक अवस्था को अपना कार्य पूर्ण करने में पाँच पाँच दिन लगते हैं। अर्थात् शरार में आज जो रस तैयार होता है उसका वीर्य बनने में ५ दिन×६ अवस्थाऐं=३० दिन का समय लगता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि १ सितम्बर को मनुष्य ने जो आहार ग्रहण किया है उसके द्वारा बीर्य १ अक्टूबर को अर्थात् ३० दिन बाद तैयार होगा। अब प्रश्न यह है कि वह वीर्य कितना होगा ? उसकी तोल अथवा परिमाण क्या होगा ?

वीर्य का परिमाण

चिकित्सा विज्ञान के द्वारा यह बात मूल रूप से सिद्ध हो चुकी है कि जब प्राणी ४० सेर अर्थात् १ मन आहार ग्रहण कर लेता है तो उससे जितना भी रस बनता हो उससे रक्त केवल १ सेर बनता है इस १ सेर रक्त को जब शेष पाँच प्राकृतिक अवस्थाओं में होकर गुजरना पड़ता है तो अन्त में उससे २ तोला वीर्य प्राप्त होता है।

इस तरह हम यह अन्दाजा लगा सकते हैं कि केवल २ तोला वीर्य प्राप्त करने के लिये हमारे शरीर को निरन्तर ३० दिन परिश्रम करना होता है और ३० दिन में हमें १ मन खुराक अपने शरीर मे पहुंचानी होती है।

जब बालक जन्म लेता है तो वीर्य केवल उसके शरीर में ही रहता है। धीरे धीरे उसके शरोर में पुष्टता आती है। वीर्य तब उसके शरीर में संचित होना आरम्भ होता है। वीर्य के संचित होने का स्थान खोपड़ी का सबसे ऊपर वाला भाग है

जहाँ शिखा अर्थात् चुटिया रखी जाती है। इस स्थान को चन्द्रमा का केन्द्र कहते हैं।

चन्द्रमा का कार्य है अमृत वर्षा करना। इसी तरह चन्द्रमा के स्थान से निरन्तर वीर्य की बूंद गिरती रहती है। इस बूंद के द्वारा शरीर को बल प्राप्त होता है। शारीरिक शक्तियों का विकास होता है। जो लोग वीर्य का रक्षण करते हैं उनके चन्द्रमा स्थान पर वीर्य जमा होता रहता है। जो वीर्य का अपव्यय करते हैं उनका यह भण्डार जब वीर्य से रहित हो जाता है तो वे काल के ग्रास हो जाते हैं। वे मृत्यू को प्राप्त करते हैं।

यह हम बात आसानी से समझ सकते हैं कि १ मन रक्त से प्राप्त होने वाला २ तोला वीर्य कितना मूल्यवान होता है? इस अमूल्य निधि का शरीर में क्या महत्व है? यही हमारे शरीर को संचालित करने वाली वह अमोघ शक्ति है जिसके द्वारा हममें बल, बुद्धि, स्फूर्ति, चेतना आदि का विकास होता रहता है।

इस वीर्य के परिमाण के द्वारा ही उसके महत्व को समझा जा सकता है। यह बात संसार विदित सत्य है कि जो वस्तु जितनी कम मात्रा में होती है वह उतनी ही मूल्यवान होती है। सोना इसी कारण सब धातुओं में मूल्यवान समझा जाता है कि उसका परिमाण काफी कम है।

यह विश्वस्त रूप से समझ लेना चाहिये कि वीर्य हमारे शरीर का राजा है। वह हमारे शरीर को जीवन ही प्रदान नहीं करता वरन हमारे जीवन को सुख और समृद्धि से परिपूर्ण करने की पूरी चेष्टा करता है।

वीर्य का स्थान

वीर्य का स्थान शरीर के सबसे ऊपरी भाग में खोपड़ी का वह भाग है जहाँ सिखा होती है इसे मस्तिष्क भी कहते हैं हमें यह बात अनुभव से भी ज्ञात होती है।

जो मनुष्य मस्तिष्क सम्बन्धी अधिक परिश्रम करते हैं वे काफी थक जाते हैं। उनका मस्तिष्क भारी हो जाता है जिसे सिर दर्द भी कहा जाता है। साधारणतया यह शंका होती है कि जो हाथ-पैर अथवा किसी भी प्रकार का श्रम नहीं करते वे क्यों थक जाते हैं।

उनका थक जाना स्वाभाविक है। कारण स्पष्ट है कि शरीर में स्फुर्ति बनाये रखने वाला तत्व वीर्य है। वीर्य जब मस्तिष्क की महनत में व्यय होता है तो शरीर को पूर्ण स्फुर्ति प्राप्त नहीं हो पाती है। जब स्फुर्ति का जीवन दाता क्षय हो जाता है तो थकावट स्वाभाविक है।

अब इसी बात को दूसरे पहलू से विचार करें तो भी उत्तर स्पष्ट होगा। एक कामुक प्रकृति वाला प्राणी जब मैथुन करता है तो वह क्यों थक जाता है? उसका सिर भारी हो जाता है। सिर में दर्द होता है। इसका उत्तर भी स्पष्ट है कि यह कामुक व्यक्ति जब अपने मैथुन में वीर्य को व्यय करता है तो उसका प्रभाव तत्काल ही उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। उसने यद्यपि मस्तिष्क का कोई भी कार्य नहीं किया परन्तु फिर भी उसका सिर भारी होकर दर्द करने लगता है। आत्यधिक कामी पुरुष पागल हो जाया करते हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि वीर्य का निवास मस्तिष्क में होता है।

अब प्रश्न उठता है कि जब वीर्य का निवास मस्तिष्क

में है तो कामुक पर उसका क्यों और कैसे प्रभाव होता है? इसका उत्तर जानने के लिये हमें ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। इन दोनों के बीच वाले सम्बन्ध को जानने के वाद ही हम उचित निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं।

ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ

मानव शरीर में दस इन्द्रियां प्रधान होती हैं। उनमें से आधी अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियां कहलाती हैं और शेष पाँच को कर्मेन्द्रियां कहते हैं। यही दसों प्रमुख हैं।

ज्ञानेन्द्रियाँ वे इन्द्रियां हैं जिनके द्वारा शरीर को वाह्य जगत का ज्ञान होता रहता है। वे ज्ञानेन्द्रियां हैं।

१. नेत्र—जिससे देखते हैं।
२. कान—जिससे सुनखे हैं।
३. नासिका—जिससे सूंघते हैं।
४. त्वचा—जिससे अनुभव करते हैं।
५. मन जिससे ग्रहण करते हैं।

कर्मेन्द्रियां वे इन्द्रियां हैं जिसके द्वारा सरीर अपने कर्म करता है। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो भी प्रेरणा होती है उसे कर्मेन्द्रियां पूर्ण करती हैं। ये कर्मेन्द्रियां हैं:—

१ जि' वा—जो स्वाद ग्रहण करती है:—
२. हाथ—जिससे कर्म किया जाता है।
३. पर—जिससे शरीर को ढोते हैं।
४. गुदा—जिससे मल त्यागते हैं।
५. मूत्रेन्द्रिय—जिससे मूत्र त्यागते हैं।

इन सभी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का वर्गीकरण उनकी कार्य पटुता तथा उपयोगिता के अनुसार ही किया गया है।

जिस प्रकार राज्य का सुचारु रूप से संचालन करने का उत्तरदायित्व राजा पर होता है और राजा की सहायता के लिए मंत्री होता है उसी तरह हमारे शरीर क्षेत्र का राजा मस्तिष्क है। समस्त इन्द्रियाँ मस्तिष्क के आधीन होती हैं। वही चेतना का केन्द्र है। उसी के द्वारा ये इन्द्रियाँ कार्य रत होती है।

मस्तिष्क शरीर का राजा है और मन उसका मन्त्री है। मन के आदेश पर इन इन्द्रियों को कार्य करने में रुचि होती है। मन के द्वारा ही ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को बल मिलता रहता है। मन और मस्तिष्क का गहरा सम्बन्ध है। मन में विवेक की कमी होती है और मस्तिष्क विवेक का पूरा ध्यान रखता है।

मन का वीर्य पर प्रभाव

जिस प्रकार मन्त्री सदेव उच्चाकाँक्षा रखता है उसी प्रकार मन भी सदैव अधिकाधिक अधिकार पाने की चेष्टा में रत रहता है। शरीर में इन दसों इन्द्रियों को भड़काने वाली एक और अदृष्टा शक्ति हैं। उसे काम कहते हैं।

काम का कोई रूप नहीं है। उसकी एक अनुभूति है, स्पर्श है और उसको केवल जाना जा सकता है। काम के स्पर्श से दसों इन्द्रियां जागृत हो जाती हैं। उनमें एक नयी स्फुर्ति और चेतना का आविर्भाव होता है। उसके स्पर्श मात्र से इन्द्रियाँ जागृत होकर रस के प्राप्त करने के लिये प्रयत्नलील होती हैं।

काम शरीर के लिये आवश्यक है और उसका महत्व समस्त विषयों में सर्वोपरि है।

काम की आवश्यकता

शरीर में शक्ति और स्फुर्ति को उत्पन्न करने वाला वीर्य भी एक सन्तुलित मात्रा ही में शरीर में निवास कर सकता है। प्रकृति का नियम है कि किसी भी वस्तु को अपनी सीमा से अधिक शक्ति शाली होने देती है।

प्रकृति सदैव से Balauce of power अर्थात् समशक्ति के नियम का पालन करती रही है। वह शरीर में रक्त एक सीमित मात्रा में बनने देती है। शरीर पर मास सीमित मात्रा में होता है। हड्डियों का बढ़ाव सोमित मात्रा में रहता है तब वीर्य ही क्यों सीमित मात्रा से अधिक शरीर में रह सकता है ? उसकी भी एक मात्रा है।

जब शरीर में किसी भी तत्व की सीमा से अधिक वृद्धि होने लगती है तो प्रकृति उसे स्वयं नष्ट करने लगतीं है। उसे हम रोग कहते हैं। रोग क्या है ?

रोग शरीर का विकार है। पंचतत्वों की नियंत्रात्मक शक्ति में जब कोई अवरोध उत्पन्न हो जाता है तो उससे जो भी विकार उत्पन्न होता है उसे हम रोग कहते हैं।

रोग अनेकों प्रकार के होते हैं। वीर्य विकार से उत्पन्न रोग बड़े कष्टदायक और सांघातिक होते हैं। उनके द्वारा शरीर की शक्ति क्षीण होती है और उनके द्वारा उत्पन्न बिकार प्राण-घातक सिद्ध हो सकते हैं।

वीर्य एक सीमित मात्रा हो में शरीर मैं रह सकने में समर्थ है। घी निसन्देह मनुष्य के लिए प्राणदाता है। परन्तु उसकी अधिकता प्राणी के लिये हानिप्रद भी हो जाती है।

इसी प्रकार एक ओर जहाँ वीर्य शरीर के लिये प्राणदाता है दूसरी ओर वही प्राणघातक भी हो जाता है।

शास्त्रों में मनुष्य को २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहने का विधान है। ब्रह्मचर्याश्रम के बाद उसे गृहस्थ हो जाना चाहिये। गृहस्थ होकर उसे भार्या का सुख प्राप्त होता है। पत्नि के साथ सहवास होता है और समय समय पर सीमा से अधिक सञ्चित वीर्य स्वतः स्खलित होता रहता है।

काम एक नशा है। उसके द्वारा बीर्य के बढ़ते हुए वेग को नष्ट किया जाता है और मनको प्रसन्नता तथा मस्तिष्क को आराम प्राप्त होता है।

वैसे भी हम सभी जानते हैं कि Monotory अर्थात् एक रसता से जीवन में अवरोध होता है। मन में मलिनता आती है। मलिनता से प्राणी को कार्य शक्ति में ह्रास होता है। मलिनता को दूर करने के लिये और जीवन में नई चेतना फूंकते रहने के लिये प्रकृति ने प्राणीं में काम का समावेश किया है।

काम एक प्रेरणा है। उसका सम्बन्ध आत्मा से है। आत्मा शरीर में सिरमौर अर्थात् सर्व श्रेष्ठ स्थान रखती है। आत्मिक प्रसन्नता और सन्तुष्टि के लिये ही प्राणी जीता है और कार्य रत होता है। काम का जब आत्मा से सम्बन्ध है तो काम के नशे में आत्मा को तुष्टि होती है।

यह मानते हुए कि काम शरीर के लिए आवश्यक है हमें यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि हम काम के नशे में इतने डूब जायें कि अपने विवेक को खो बैठें और अपने शरीर को ही नष्ट करने पर उतारू हो जायें हमें काम की आवश्यकता महसूस करते हुए भी अपने विवेक को कायम रखना चाहिये और साथ

ही उतना ही उसका उपयोग करना चाहिए जितना आवश्यक हो अथवा शरीर को सहन हो सके ।

'अति सर्वत्र वर्जयते' प्रकृति का महामन्त्र है । हमें जीवन की किसी भी परिस्थितियों में अति नहीं करनी चाहिये । 'सदैव सम-शक्ति के नियम का पालन करना चाहिये ।

आप यदि प्रकृति को देखें तो आपको ज्ञात होगा कि झाड़ियों कीं टहनियाँ और पत्ते यदि समय-समय पर न काटे जायें तो झाड़ी की बढ़ोत्तरी रुक जाती है । पानी यदि अधिक मात्रा में रोक रखने के लिये उसका बहाव रोक दिया जाये तो वह सड़ने लगता है । पक्षियों को यदि उड़ने से रोक दिया जाये तो वे अपना सङ्गीत भूल जाते हैं । यदि पतझड़ में पुराने पत्ते न टूटे तो नये पत्ते पेड़ों पर न आये ।

इसी प्रकार हमारे शरीर के उत्थान के लिये सीमित मात्रा में काम की आवश्यकता है ।

वीर्य रक्षा

जिस प्रकार स्वर्ण, हीरे जवाहरात अदि अमूल्य वस्तु को सुरक्षित रशने के लिए सावधानी को पूरी आवश्यकता होती है उसी प्रकार शरीर की अमूल्य निधि वीर्य को सुरक्षित रखने के लिए भी प्राणी को पूरी तरह सतर्क रहना होता है । यदि तनिक भी असावधानी की गई तो जिस प्रकार अमूल्य वस्तुऐं चोरी हो जाती हैं उसी तरह वीर्य भी अपने स्थान से च्युत हो जाता है। शरीर का विकास रुक जाता है। शक्ति का ह्रास होता है। मन में मलिनता आ जाने से कार्य क्षमता पर प्रभाव होता है। जीवन नीरस हो जाता है। स्फुर्ति नष्ट होती है।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि वीर्य की रक्षा करना

मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। वीर्य रक्षा करने के लिये निम्न बातों को ध्यान रखना परम आवश्यक है।

१। बिचारों की शुद्धता।

२. शरीर रक्षण।

३· स्वच्छ सङ्गत।

इस सभी बातों का प्रभाव प्राणी के जीवन तथा उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। जो मनुष्य इन नियमों का पालन करते हैं उनका जीवन सरस तथा उच्च बनजाता है। जो इन नियमों की अबहेलना करते हैं उनका जीवन दूभर हो जाता है।

१–शुद्ध विचार

हम पहले ही यह स्पष्ट कर चुके हैं कि प्राणी के जीवन में उसके शरीर के अन्य अङ्गों को अपेक्षा मस्तिष्क का सर्वाधिक महत्व है। मस्तिष्क का सम्बन्ध आत्मा से है। मस्तिष्क के विचारों के ही अनुसार बुद्धि उपजती है और बुद्धि के अनुसार जीवन क्रम होता है।

संसार में हरक्षेत्र में सफलना प्राप्त करने के लिये आत्मा का बली अथवा शक्तिशाली होना परम आवश्यक होता है। जिस प्राणी की आत्मा जितनी बली होती है उतनी ही सफलता उसे प्राप्त होती हैं।

विचार निम्न प्रकार के होते हैं—

१—आध्यात्मिक

२—-उच्च-सिद्धान्तवादी

३—प्रोयोगात्मक
४—यथार्थवादी
५—सांसारिक सुख भोग सम्बन्धी
६—निम्न अर्थात् कामोत्तेजक

१. आध्यात्मिक—वे होते हैं जिनका इष्ट आत्मा तथा परमात्मा की प्राप्ति होता है। जैसे कुछ मनुष्य आत्मा को सर्व-रूपेण सत्य मानकर उसकी शक्ति के द्वारा परमात्मा अथवा सृष्टि के नियन्ता परमतत्व को प्राप्त करना चाहते हैं।

लोक और परलोक में विश्वास रखने वाले आत्मा से सम्बन्धित ज्ञान को अपना परम हित मानते हुए जिन विचारों में सदैव उलझे रहते उन विचारों को ही आध्यात्मिक श्रेणी में रखा जाता है।

इस प्रकार के विचार सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। आध्यात्म-वादी मनुष्य संसार में अनुरक्त नहीं हो पाते। वे विरक्ति में ही आनन्द प्राप्त करते हैं। और इस बिरक्ति द्वारा ही वे अपने जीवन को श्रेष्ठ बना सकते हैं।

संसार में जिन महा पुरुषों का नाम सदैव से चला आरहा है वे सभी अध्यात्मवादी थे। भारत में महर्षि व्यास, योगिराज कृष्ण, युधिष्टिर, श्रीराम, महर्षि वशिष्ठ, इत्यादि प्राचीन काल में प्रमुख हुये थे।

आधुनिक समय में महात्मा गान्धी, रामकृष्ण परमहँस, स्वामी विवेकाकानन्द, महात्मा तिलक, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि भी आध्यात्मिक विचारों के श्रेष्ठ पुरुष रहे हैं। आध्यात्मिक चिन्तन में लिप्त रहने वाले जीव को जब सांसारिक

जीवन का ज्ञान ही नहीं रहता तो कामवासना आदि का क्या महत्व है। वह अपनी आत्मा को इतना बली बना लेता है कि उसके सम्मुख संसार के समस्त सुख व्यर्थ ही प्रतीत होते हैं। उसका जीवन आत्मिक विकास अथवा दीन दुखियों के कल्याण में ही लगा रहता है। समस्त इन्द्रियाँ उसकी दास रहती हैं और वह निरन्तर आध्यात्मिक विचारों में डूबा रहने के कारण काम पर विजय प्राप्त कर लेता है।

उसका मस्तिष्क अति शक्तिशाली होता है। उसकी विचार शक्तियों के द्वारा उसके वीर्य की पर्याप्त मात्रा नष्ट होती रहती है।

वीर्य स्खलित एवं नष्ट होने के दो ही साधन हैं पहला पहला काम-भोग दूसरा मस्तिष्क। निदान इस प्रकार के विचारशील पुरुष का वीर्य उनके मस्तिष्क द्वारा पर्याप्त मात्रा में नष्ट होता रहता है। यही कारण है कि उन लोगों को भोग की इच्छा नहीं होती। साथ ही उनकी आत्मा इतनी शक्तिशाली होती हैं कि समस्त इन्द्रियाँ उसके आधीन रहती हैं। जिनकी विचारधारा के साथ आत्मा का सम्बन्ध रहता है वे श्रेष्ठ हैं।

२. उच्च सिद्धान्तवादी—समाज का अस्तित्व सिद्धान्तों पर टिका हुआ है। सिद्धान्त ही वे आधार हैं जिन पर मानव समाज का अस्तित्व रखा गया है। सिद्धान्त क्या हैं? सिद्धान्त वे प्रमाणिक मानव जीवन के दृष्टिकोण हैं जिनका समय-समय पर परीक्षण होता रहा है और जिनके द्वारा समाज की व्यवस्था बनाये रखने में सहायता मिलती रही हैं अथवा मिलने की आशा होती हैं।

सिद्धान्त मानव जीवन के परीक्षण होते हैं। उन सिद्धान्तों की रचना प्रयोगों पर होती हैं। प्राणी अपने प्रयोगों के आधार पर ही सिद्धान्त की रचना करता है और उनके कर्म को समझता है।

सिद्धान्त दो प्रकार के होते हैं। उच्च तथा निम्न उच्च सिद्धान्त वे कहे जाते हैं जिनके द्वारा समस्त समाज, मानव जाति एवं राष्ट्र तथा देश का कल्याण होता है। निम्न सिद्धान्त वे होते हैं जिनमें प्रतिपादन करने वाले किसी एक वर्ग, जाति अथवा समाज के किसी एक विशिष्ट अङ्ग का ही स्वार्थ साधना के हेतु होता हो। जो मनुष्य उच्च सिद्धान्त लेकर समाज में प्रतिष्ठित होते हैं उनको तपस्या करनी होती है। वे मान-मर्यादा कृत्य-अकृत्य का पूर्ण ध्यान रखते हैं। इस कारण उनका मस्तिष्क कर्तव्यशील बना रहता है। मानसिक स्वच्छता के कारण उनका वीर्य उचित दिशा में शक्ति का स्रोत बना रहता है।

३. प्रयोगात्मक—जिस प्रकार समाजिक कार्यकर्त्ता जीवन में प्रयोग करते हैं उसी प्रकार वैज्ञानिक तथा अन्य प्रकार से अनुसन्धानकर्त्ता अपने-अपने क्षेत्रों में प्रयोग करते रहते हैं। उनके प्रयोग मानव कल्याण के लिये होते हैं। वे अपने प्रयोगों में इतने रत हो जाते हैं कि उनको अपने तन, मन की कोई चिन्ता नहीं रहती है। इस प्रकार के अनुसन्धान करने वालों को अपने मस्तिष्क से अधिक कार्य करना होता है। निदान उसकी शक्ति का ह्रास मस्तिष्क के द्वारा अधिक होता है।

जो इस प्रकार के प्राणी होते हैं उनकी जब मस्तिष्क

शक्ति उनके प्रयोगों में व्यय होती रहती है तो उनके वीर्य का केन्द्रीकरण मस्तिष्क की ओर रहता है। वे अपने अन्य शारीरिक अङ्गों के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

उनके मस्तिष्क में केवल उनके प्रयोग का विषय ही केन्द्र बना रहता है। वे सांसारिक अन्य विषयों में कदापि रत नहीं हो पाते हैं। ऐसी दशा में उनको सहज हा सम्भोग, विलास आदि का ज्ञान नहीं रहता। वे शुद्ध विचार वाले बने रहते हैं। उनका वीर्य अपने केन्द्र से च्युत नहीं हो पाता है।

४. उच्चादर्श—प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरातन काल में अनेकों इस प्रकार की आत्माऐं हो चुकी हैं जिन्होंने अपने व्रत और तप से अनेकों प्राणियों को चकित करने वाली सिद्धियाँ प्राप्त करती थीं।

भीष्म पितामह ब्रह्मचर्य के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। पिता की इच्छा की पूर्ति के लिये उन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और मरण सर्यन्त उसका निर्बाह किया। हम सभी जानते हैं कि जब सत्यवती के तीनों पुत्र काल के ग्रास हो गये तो सत्यव्रती ने स्वयं उनसे वंश की रक्षा करने के हेतु विवाह करने को कहा। परन्तु भीष्म का व्रत वह न तोड़ सकीं।

महावीर हनुमान ने ब्रह्मचर्य की शक्ति के द्वारा अजेय रावण के छक्के छुड़ा दिये थे। उन्होंने अपने पराक्रम से वे कार्य किये जिनकी कल्पना करने मात्र से रोमांच हो आता है। महाबली भीम के नाम से सभी परिचित हैं उनके पराक्रम की सराहना करते हुए शत्रु भी नहीं थकते।

वीर कुणाल ने उच्च आदर्शों से ही प्रेरित होकर अपनी विमाता की प्रणय-भिक्षा को ठुकरा दिया और अपने नेत्र देना स्वीकार कर लिया। इन आदर्शों को सामने रख कर चलने वाले लोगों को न तो आज कमी है और न कभी रहेगी। जो प्राणी जिस भावना से प्रेरित होकर अपने जीवन को जिस प्रकार के ढांचे में ढालना चाहता है वह वैसा ही कर सकने में समर्थ हो सकता है। केवल उसके मनमें उस प्रेरणा के लिये एक कटोर निश्चय और भावना की आवश्यकता होनी चाहिये।

इन उच्चादर्शों पर चलने वालों की यही विशेषता है कि उनके विचार सदैव शुद्ध रहते हैं और उनका वीर्य अपने स्थान से सहज ही च्युत नहीं होता है।

५. राष्ट्रीयता—हर प्राणी अपने राष्ट्र के प्रति वफादार होना चाहिए। वही राष्ट्र उन्नति कर सकता है जिसके निवासी राष्ट्रीयता के रङ्ग में रङ्गे हुए होते हैं।

जब राष्ट्रीयता का प्रश्न आता है तो हमें प्राणियों की मनोवृत्ति को देखना होता है। वे ही लोग राष्ट्रीयता के विचारों से ओत-प्रोत हो सकते हैं जिनके विचार शुद्ध होते हैं। वे लोग ही अपनी उन्नति को लालायित रहते हैं जो उच्च आदर्शों से प्रेरित रहते हैं वे लोग ही समाज का हित कर सकते हैं जो प्राणी मात्र का हर तरह से कल्याण चाहते हों। जिनमें स्वार्थ नहीं होता।

निदान राष्ट्रीयता के विचार वाले मनुष्य शत-प्रतिशत शुद्ध विचार वाले होते हैं। वे मन, वचन और कर्म से अपने राष्ट्र का उत्थान चाहते हैं। ये उत्थान तभी सम्भव है जब कि उनके विचार शुद्ध हों। जिसके विचार शुद्ध होते हैं उनका वीर्य अपने स्थान से च्युत नहीं होता है।

६. शिक्षा—वास्तविक शिक्षा का वही कार्य है जो कि मशाल अन्धकार को दूर करने में करती है शिक्षा के द्वारा प्राणी की अज्ञानता का नाश होता है । उसके कुसंस्कार नष्ट होते हैं और वह शनैः शनैः मानवता की ओर बढ़ता है। मानवता का वास्तविक अथ है दया और प्राणी मात्र से प्रेम।

जो मानवता की ओर अग्रसर होता है उसमें स्वतः ही वे सभी गुण आने लगते हैं जो कि शुद्ध विचार के लिये परम उपयोगी होते हैं।

शिक्षा का कार्य अज्ञानता को नष्ट करना है। अविवेक को दूर करना है। ज्ञान के द्वारा आगामी हानियों से बचाना है। ऐसी दशा में शिक्षा शुद्ध विचारों के निर्माण में सबसे अधिक सहयोग देती है।

शिक्षा के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाला प्राणी अपनी हानियों, समाज की हानियों और अपने कर्म द्वारा देश की हानियों से परिचित रहता है। उसे यह ज्ञान रहता है कि इन कर्मों के द्वारा वह अपना ही नहीं वरन् अन्य सम्बन्धित वर्गों का भी अहित कर रहा है। इसलिये वह उन कार्यों से सदैव अपने को बचाये रखने की चेष्टा करता है जिसके द्वारा उसे किसी भी प्रकार भी अहित की सम्भावना होती है। उसके शुद्ध रहते हैं।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि हमारे शुद्ध विचारों के बिविध पहलू हमें किस प्रकार वीर्य रक्षा में सहायक होते हैं ? शुद्ध विचार वान प्राणी कदापि वीर्य को क्षय नहीं कर पाता। कहना तो इस तरह चाहिये कि वह अपने बिवेक के द्वारा उसको नष्ट होने से बचाता है। उसकी रक्षा करता है और उसका उपयोग अपने हित के कामों में लेता है।

जिसके पास शुद्ध विचार वाला मस्तिष्क है उसे ब्रह्मचय साधन करने की आवश्यकता ही नहीं होती। उसके विचारों की शुद्धता के कारण उसके सम्मुख ऐसा कोई उपकरण ही स्थित नहीं हो पाता जिसमें उसे मर्यादा से अधिक वीर्य की क्षय का प्रश्न हो सके।

मस्तिष्क से काम करने वालों को स्वतः ही वीर्य की अधिक आवश्यकता होती है! उनका वीर्य स्वतः ही मस्तिष्क के कार्य में व्यय होता है।

२–शरीर रक्षण

ऊपर हम जिन मनुष्यों का उल्लेख करके आये हैं उनमें से अधिकांश लोग विचार शील होते हैं। वे मस्तिष्क का महत्व जानते हुए ही संसार में जीवित रहते हैं।

अब दूसरी श्रेणी के वे लोग होते हैं जो कि कठोर सत्य अर्थात् यर्थाथवाद में विश्वास करते हैं। वे विचारों को अधिक महत्व नहीं देते। वे शारीरिक बल और शक्ति को सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। उनको अपने शरीर रक्षण की चिन्ता रहती है। इस प्रकार के प्राणियों के दृष्टि कोणों को हम निम्न प्रकार रख सकते हैं:—

१. प्राकृतिक दिनचर्य्या वाले।
२. शारीरिक विकास के हितू।
३. पहलवान।
४. योगी।

१. प्राकृतिक दिनचर्य्या वाले—जो लोग प्राकृतिक को

आधार मानकर अपनी दिनचर्या को चलाते हैं वे इसी श्रेणी में आते हैं। प्रकृति के अपने स्पष्ट निगम हैं। इन नियमों के अनुसार चलने वाला प्राणी कदापि रोगी नहीं होता। उसकी शक्ति निरन्तर बढ़ती रहती है ! शरीर रक्षण होता है और वीर्य अपने स्थान से च्युत नहीं होता।

प्राकृतिक नियमों से हम सभी परिचित हैं। वे वास्तव में अमोघ हैं। समस्त सृष्टि उसका पालन करती है। संक्षेप मे इन नियमों को निम्न प्रकार वर्णन किया जा सकता है:—

१—मनुष्य को सूर्योदय के पूर्व हो उठ जाना चाहिये। यदि हम गौर से देखें तो हमें सहज ही ज्ञात होगा कि सूर्य के उदय होने से पूर्व उठना ही प्रकृति का नियम है। पशु, पक्षी तथा सृष्टि के समस्त जलचर, नभचर, और पृथ्वी पर रहने वाले जीव उसी समय उठ जाते हैं । यदि वे ऐसा न करें तो वे नष्ट हो जायें मनुष्य तो रोगी होकर अपनी चिकित्सा कराने में समर्थ है। परन्तु वेचारे ये जीव कहाँ चिकित्सा करावें। उनकी देख रेख का जिम्मा प्रकृति के ऊपर ही है और यही कारण है कि वे किसी भी दशा में प्रकृति के नियमों का उलंघन नहीं करते हैं। वे जानते हैं कि यदि उन्होंने प्रकृति के नियमों को भङ्ग किया तो प्रकृति उनको नष्ट करने में पूर्णतया समर्थ है।

२—ऋतु अनुसार आहार ग्रहण करने से शरीर की रक्षा होती है। ऋतु का शरीर और स्वास्थ्य दोनों पर ही प्रभाव होता है। ग्रीष्म में शीत ऋतु का आहार करने से शरीर में गर्मी बढ़ती है। शरीर में गर्मी बढ़ने से शरीर का नियन्त्रण भङ्ग होता है और इस कारण उसका विकास रुक जाता है।

इसी प्रकार विपरीत ऋतु के आहार का शरीर पर बुरा प्रभाव होता है।

३—प्रातः थोड़ासा आहार करने के बाद कार्य रत हो जाने से स्फूर्ति बनी रहती है। दोपहर का भोजन करने के उपरान्त थोड़ी देर आराम करने से भोजन शीघ्र ही पच जाता है और शरीर का विकास उत्तरोत्तर होता ही रहता है। दोपहर के भोजन के बाद आराम करना स्वास्थ्य के लिये बहुत ही उपयोगी होता है। रात्रि का भाजन सोने के समय से तीन या चार घंटे पहले कर लेना चाहिये। रात्रि के भोजन के बाद एक या दो मील तक टहल लेना उत्तम होता है। भाजन पच जाने के बाद अगर विस्तर पर लेटा जाता है तो नींद अच्छी आती है और शरीर स्वस्थ रहता है। प्राकृतिक नियम के अनुसार चिराग जलने के एक घण्टे बाद सो जाना चाहिये। जो लोग रात को देर तक जागते हैं और दिन में शयन करते हैं उनका शरीर गिरने लगता है। Early to bed and early to rise. Make a man Helthy, wealthy and wise एक पुरानी अँग्रेजी कहावत है जो अक्षरशः सत्य है।

४—जो लोग नियमानुसार दिनचर्य्या बनाये रखते हैं शरीर सदैव स्वस्थ रहता है। प्रातःविस्तर से उठते ही एक लोटा ताजा जल पीकर शौच को जाते हैं, दान्तुन करके थोड़ा सा व्यायाम करते हैं। स्नान करते हैं। रात को छायादार स्थान में शयन करते हैं। दोनों समय ताजा भोजन ग्रहण करते हैं। उनका शरीर कभी रोगी नहीं होता है। शरीर को यदि नित्य शुद्ध रखा जाये और समयानुकूल प्रकृति के रुख से बचाया जाये तो उसका रक्षण स्वतः ही होता रहता है।

जिन मनुष्यों ने अपने शरीर की रक्षा के हेतु अपनी

दिनचर्य्या को प्रकृति के अनुसार बना रखा है उनको काम नहीं सताता। वीर्य की स्वतः रक्षा होती रहती है। नियमानुसार चलने वाले प्राणी के वीर्य की रक्षा प्रकृति स्वयं ही करती है।

२. शारीरिक विकास के हित---कुछ लोग अपने शरीर को विकसित करने के विचार वाले होते हैं। वे इस तथ्य को अधिक महत्व देते हैं कि शरीर में जितनी अधिक शक्ति होगी उतना ही लाभ होता है वे इस विचार से प्रभावित होकर शरीर को विकसित करने की टोह में सर्वदा लगे रहते हैं।

इस प्रकार के मनुष्यों के सम्मुख जो आदर्श होते हैं वे शारीरिक शक्ति के प्रतीक रहते हैं। इस कारण वे लोग उन सभी बातों से अपने को अलग रखे रहते हैं जिससे उनके शरीर के विकास में तनिक भी बाधा न पड़े।

वीर्य का महत्व सनातन काल से मनुष्यों को ज्ञात है। वे जानते हैं कि वीर्य की रक्षा करने से प्राणी की आयु में वृद्धि होती है। उसके शरीर के अङ्ग,प्रत्यङ्गों का पूर्ण विकास होता है। निदान इस प्रकार के लोग प्राण-प्रण से अपने वीर्य की रक्षा करते हैं।

वे जानते हैं कि यदि शरीर में वीर्य की मात्रा को रोके रखना है तो शारीरिक अङ्गों को मजबूत बनाना होगा और उनको शक्तिशाली बनाने के लिये उनके विकास के लिये कुछ करना आवश्यक है। अतः वे लोग शरीर को विकसित बनाये रखने के लिये पर्याप्त शारीरिक महनत करते हैं। इस शारीरिक महनत का फल अच्छा होता है।

शारीरिक परिश्रम के कारण उनका वीर्य उनके शरीर में लय हो जाता है। वह एक रस होकर अङ्ग-प्रत्यङ्गों को पुष्ट

करता है। उसके मस्तिष्क को शुद्ध रखता है। परिश्रम करने के कारण उनको जो थकावट आती है उसे मिटाने के लिए निर्बिघ्न आराम की आवश्यकता होती है। निदान श्रम के द्वारा उत्पन्न थकावट उनके वीर्य को च्युत नहीं होने देती। मस्तिष्क में जब यह भावना सजग हो जाये कि शरीर का पूर्ण विकास करना है तो प्राणी वीर्य की स्वतः रक्षा करने में तत्पर रहता है।

३. पहलवान—पहलवानी एक शौक है जो सनातन काल से चला आ रहा है। यह सच है कि आधुनिक वातावरण में पहलवानी को एक पेशा बना लिया गया जो समाज के लिए बहुत हानि कारक है। परन्तु हमारा तात्पर्य उस शौक से है जो उसका रूप प्रारम्भ से रहा है।

पहलवानी के शौकीन अपने शरीर के महत्व को समझते हैं उनका शरीर उनकी सबसे अमूल्य निधि होती है। उसकी रक्षा के लिये वे समस्त कार्य करने को तत्पर रहते हैं।

वे जानते हैं कि वीर्य ही एक मात्र शक्ति है। वीर्य की ओज से अङ्गों का विकास होता है। शरीर स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल रहता है। वीर्य रक्षण के द्वारा ही शरीर में उस अमूल्य शक्ति का संचार होता है जिसके द्वारा गौरव प्राप्त हो सकता है। वे वीर्य की रक्षा के लिये प्रारम्भ ही से कटिबद्ध रहते हैं। अपने मनको शुद्ध रखते हैं। अपनी सङ्गत को शुद्ध रखते हैं और वीर्य के विकार सम्बन्धी विचारों तक से स्वयं को दूर रखने की पूर्ण चेष्टा करते हैं।

उन्हें यह ज्ञान रहता है कि वीर्य ही के संचय से वे अपने शरीर में शक्ति का संचार रख सकते हैं। अपनी शक्ति

को बढ़ाने तथा अपने वीर्य को उचित दिशा प्रदान करने की इच्छा से नाना प्रकार के उन व्यायामों को करते हैं जिनमें वीर्य की दिशा मुड़ सके ओर उनके शरीर को बली एवं शक्ति-शाली बना सके।

भारत के प्रख्यात पहलवान गामा, राममूर्ति, दारासिंह, आदि वीर्य की रक्षा करते हुए शरीर को पुष्ट बनाने में विख्यात है। उन्होंने देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपनी पहलवानी से ख्याति प्राप्त की

४. योगी—वे प्राणी जो योग साधनों में अपने को रत रखने में अपना गौरव समझते हैं योगी कहलाते हैं। वे अपने मन, मस्तिष्क आदि को समस्त साँसारिक प्रपंचों से मुक्त रखते हैं और समस्त इन्द्रियों सहित अपने ध्यान को एकीकरण करके अपनी आत्मा में लगा लेते हैं। इस प्रकार के योगी अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को अपने मनके वशीभूत रखते हैं।

उनका मन अचल रहता है। मनमें केवल एक ही लगन और एक ही भावना व्याप्त रहती है। वह है आत्म चिन्तन रूप योग साधना।

योगीजन आसनों का प्रयोग करते हैं। इन आसनों के द्वारा उनका मन चलायमान नहीं होता और उनका शरीर स्वस्थ रहता है। उदाहरणार्थ समाधि लगाने वाले योगी हफ्तों और महीनों एक ही समाधि में गुजार देते हैं। हफ्तों, महीनों अपने शरीर को एक ही दशा में रखे रहना वास्तव में बहुत ही टेढ़ा कार्य है। परन्तु योगीजन वास्तव में ऐसा कर सकने में समर्थ होते हैं।

यह बात नहीं कि इस प्रकार की क्लिष्ट क्रियाओं का उनके शरीर अथवा मन पर प्रभाव नहीं होता है। उनका शरीर इस असाधारण स्थिति से क्षय हो सकता है। परन्तु उसकी रक्षा का उनको ध्यान रहता है। वे अपने शरीर की शक्ति को भी समझते हैं। वे यह जानते हैं कि यदि पूर्ण रूपेण वे अपने शरीर के प्रति सजग नहीं रहे तो उनका शरीर क्लेश पायेगा और उससे उनकी साधना में विघ्न होगा।

इसी उद्देश्य से इस प्रकार के योगी जन पहले अपने शरीर को योग साधना के भार के सहने के अनुकूल बनाते हैं। वे विभिन्न प्रकार के आसनों के द्वारा शरीर को तैयार करते हैं। उन आसनों के निरन्तर प्रयोग से उनका शरीर शुद्ध रहता है। उनके अङ्ग शक्तिशाली होते हैं। वीर्य की शक्ति प्रबल होती है योगिक क्रियाओं द्वारा वीर्य की गति को अपने अनुकूल दशा में मोड़ने में जब वे समर्थ होते हैं तभी वे योग की साधना में रत होते हैं। योगियों का वीर्य उनके ब्रह्माण्ड में रहता है। उसकी शक्ति का व्यय योग की अवस्था में शरीर को सजीव रखने में होता है। उनके शरीर की गति शक्ति और सजीवता वीर्य पर निर्भर होती है योग साधना में उनका वीर्य निरन्तर व्यय होता रहता है। यही कारण है कि उनको वीर्य रक्षा की आवश्यकता नहीं होती है।

शरीर रक्षण से सम्बन्धित वर्ग के समस्त मनुष्यों का वीर्य उचित रीति से उनके शरीर में बना रहता है। येन-केन उपकरणों से उसकी रक्षा स्वतः होती है अथवा जिन विचारों और नियमों का आश्रय लेकर ये लोग अपना जीवन यापन करते हैं। उस रीति से उनके वीर्य की रखा होती रहती है।

इस प्रकार के प्राणी अपनी लगन के पक्के होते हैं उनका मन अचल होता है उनका मन उनके इष्ट में लग

रहता है। इष्ट की प्राप्ति के हेतु वे शरीर में ओज बनाये रखने में सजग होते हैं।

३. स्वच्छ सङ्गत

हम सभी जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में उत्पन्न होता है, समाजमें रहता है और समाज में रहते हुए ही मर जाता है। ऐसी दशा में उसका समाज के अन्य मनुष्यों के साथ सम्पर्क में आना स्वाभाविक ही है।

जब सम्पर्क और संसर्ग होता है तो एक मनुष्य का प्रभाव दूसरे पर अवश्य ही पड़ता है। यह प्रकृति का नियम है कि जीव, स्थावर तथा जङ्गम जो भी हो अपनी सङ्गत के प्रभाव से कदापि मुक्त नहीं हो पाते हैं।

गुलाब की क्यारी की मिट्टी में भी गुलाब की सुगन्ध बस जाती है। तितलियाँ फूलों के अनुसार रङ्ग बदलती हैं। हवा वातावरण को सुगन्ध की हो तरी देती है। उसी से गमकती रहती है। तेज खुशबू अपने से धीमी खुशबू पर छा जाती है।

कहने का अभिप्राय स्पष्ट है कि सङ्गत का असर प्रकृति की देन है। इसमें कुछ संशय नहीं कि आदमी पर उसकी सङ्गत का गहरा प्रभाव होता है। सङ्गत का प्रभाव निम्न प्रकार. से होता है:—

१—विचारों के द्वारा।
२—नीति के द्वारा।
३—आहार व्यवहार के द्वारा।
४—होड़ा होड़ी के द्वारा।

इन चारों का जब हम स्पष्टी करण करते हैं तो हमारे सामने स्पष्ट फल प्राप्त होता है।

१. विचारों के द्वारा—सम्भाषण का असर मनुष्य पर पड़ता है। क्योंकि विचारों की जननी ही आपस का विचार विमर्श होता है। जो मनुष्य जैसे मनुष्यों की समाज में बैठकर विचार विमर्श करता है उसके अनुसार ही उसके विचारों की धारा बनती है।

अखिल भारतीय कांग्रेस का जन्म एक अँग्रेज द्वारा हुआ। मिस्टर ह्यूम ने काँग्रेस की स्थापना के द्वारा वृटिश साम्राज्य की जड़ें गहरी करने का विचार किया था। प्रारम्भिक वर्षों में उनका कार्य भी हुआ। अपनी स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में सदैव कांग्रेस ने वृटिश शासन का पक्ष ग्रहण करते हुए सरकारी नीतियों का अनुमोदन ही किया। उसका कारण विचार थे।

जब भारतीय लोगों का विदेशों के साथ सम्बन्ध हुआ और विदेशी राष्ट्रीय पार्टियों के नेताओं के साथ कांग्रेस के नेताओं का विचार विमर्श हुआ तो धीरे-धीरे वह शासन की भर्त्सना करने लगी। वह बृटिश सरकार की पिट्ठू न रह सकी।

जब भारतीयता के रङ्ग में रङ्गे हुए लोगों ने काँग्रेस में पदार्पण किया और नेतृत्व ग्रहण कर लिया तो वह काँग्रेस वृटिश साम्राज्य की कट्टर शत्रु होगई और अन्त में उसने वृटिश शासन को समाप्त करके ही छोड़ा।

क्योंकि यह कार्य एक सङ्गठन का था अतः उस पर संगत का फल देर से हुआ। सङ्गठन की अपेक्षा व्यक्ति पर सङ्गत का फल शीघ्र होता है। क्योंकि व्यक्ति अकेला होता है और उसकी अपनी बुद्धि ही उसका एक मात्र अवलम्ब होता है।

योरोप के कार्ल मार्क्स ने पूंजी के विरुद्ध एक पुस्तक लिखकर श्रमिकों को धनियों के विरुद्ध सजग कर दिया। थोड़े ही समय में उसके विचार के समर्थक उत्पन्न होगये और उन समर्थकों ने रूप जैसे विशाल देश को कम्यूनिजम के रङ्ग में रङ्ग दिया। रूसमें श्रमिकों की सार्वभौम सत्ता स्थापित होगयी।

इसी तरह हम अपने जीवन में अनेकों उदाहरण सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में देखते हैं एक व्यक्ति आज जो शान्ति का पक्षपाती है अपनी सङ्गत के कारण हिन्सा का पक्षपाती हो जाता है जो आज अध्यात्मिक महत्व को सर्बाधिक महत्व देता है कल वह व्यभिचार में रत रहने लगता है।

यह सब क्या है ? इसका मूल कारण उसकी सङ्गत है। आदमी में जो आमूल परिवर्तन होता है वह उसके विचारों के कारण होता है। सनातन ग्रन्थों के देखने से पता लगता है कि जिन लोगों ने बड़ी उग्र तपस्यायें करके महान वरदान और शक्तियाँ प्राप्त की थीं वे कालान्तर में बड़े कुख्यात राक्षस सिद्ध हुए। ऐसा क्यों था ? केवल विचारों के परिवर्तन के कारण। यह विचार सङ्गत के द्वारा ही बदल गये थे।

इसीलिये प्रसिद्ध समाज शास्त्रियों ने बारम्बार मनुष्य की सङ्गत पर जोर दिया है। उनका यही कहना है कि प्राणी को सदैव अच्छी सङ्गत में रहना ही चाहिये। वे जानते हैं कि संगत ही प्राणी के संस्कारों को जन्म तथा पोषण करने वाली शक्ति है।

२. नीति के द्वारा—विचारों के द्वारा संगत का प्रभाव जिस तरह मनुष्य पर पड़ता है उसी प्रकार नीति का प्रभाव भी संगत से ही उत्पन्न होता है। नीति द्वारा संगत का प्रभाव स्वाभाविक है।

इन चारों का जब हम स्पष्टीकरण करते हैं तो हमारे सामने स्पष्ट फल प्राप्त होता है।

१. विचारों के द्वारा—सम्भाषण का असर मनुष्य पर पड़ता है। क्योंकि विचारों की जननी ही आपस का विचार विमर्श होता है। जो मनुष्य जैसे मनुष्यों की समाज में बैठकर विचार विमर्श करता है उसके अनुसार ही उसके विचारों की धारा बनती है।

अखिल भारतीय कांग्रेस का जन्म एक अँग्रेज द्वारा हुआ। मिस्टर ह्यूम ने काँग्रेस की स्थापना के द्वारा वृटिश साम्राज्य की जड़ें गहरी करने का विचार किया था। प्रारम्भिक वर्षों में उनका कार्य भी हुआ। अपनी स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में सदैव कांग्रेस ने वृटिश शासन का पक्ष ग्रहण करते हुए सरकारी नीतियों का अनुमोदन ही किया। उसका कारण विचार थे।

जब भारतीय लोगों का विदेशों के साथ सम्बन्ध हुआ और विदेशी राष्ट्रीय पार्टियों के नेताओं के साथ कांग्रेस के नेताओं का विचार विमर्श हुआ तो धीरे-धीरे वह शासन की भर्त्संना करने लगी। वह बृटिश सरकार को पिट्ठू न रह सकी।

जब भारतीयता के रङ्ग में रङ्गे हुए लोगों ने काँग्रेस में पदार्पण किया और नेतृत्व ग्रहण कर लिया तो वह काँग्रेस वृटिश साम्राज्य की कट्टर शत्रु होगई और अन्त में उसने वृटिश शासन को समाप्त करके ही छोड़ा।

क्योंकि यह कार्य एक सङ्गठन का था अतः उस पर संगत का फल देर से हुआ। सङ्गठन की अपेक्षा व्यक्ति पर सङ्गत का फल शीघ्र होता है। क्योंकि व्यक्ति अकेला होता है और उसकी अपनी बुद्धि ही उसका एक मात्र अवलम्ब होता है।

योरोप के कार्ल मार्क्स ने पूंजी के विरुद्ध एक पुस्तक लिखकर श्रमिकों को धनियों के विरुद्ध सजग कर दिया। थोड़े हो समय में उसके विचार के समर्थक उत्पन्न होगये और उन समर्थकों ने रूप जैसे विशाल देश को कम्यूनिजम के रङ्ग में रङ्ग दिया। रूसमें श्रमिकों की सार्वभौम सत्ता स्थापित होगयी।

इसी तरह हम अपने जीवन में अनेकों उदाहरण सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में देखते हैं एक व्यक्ति आज जो शान्ति का पक्षपाती है अपनी सङ्गत के कारण हिन्सा का पक्षपाती हो जाता है जो आज अध्यात्मिक महत्व को सर्वाधिक महत्व देता है कल वह व्यभिचार में रत रहने लगता है।

यह सब क्या है ? इसका मूल कारण उसकी सङ्गत है। आदमी में जो आमूल परिवर्तन होता है वह उसके विचारों के कारण होता है। सनातन ग्रन्थों के देखने से पता लगता है कि जिन लोगों ने बड़ी उग्र तपस्यायें करके महान वरदान और शक्तियाँ प्राप्त की थीं वे कालान्तर में बड़े कुख्यात राक्षस सिद्ध हुए। ऐसा क्यों था ? केवल विचारों के परिवर्तन के कारण। यह विचार सङ्गत के द्वारा ही बदल गये थे।

इसीलिये प्रसिद्ध समाज शास्त्रियों ने बारम्बार मनुष्य की सङ्गत पर जोर दिया है। उनका यही कहना हैं कि प्राणी को सदैव अच्छी सङ्गत में रहना ही चाहिये। वे जानते हैं कि संगत ही प्राणी के संस्कारों को जन्म तथा पोषण करने वाली शक्ति है।

२. नीति के द्वारा—विचारों के द्वारा संगत का प्रभाव जिस तरह मनुष्य पर पड़ता है उसी प्रकार नीति का प्रभाव भी संगत से ही उत्पन्न होता है। नीति द्वारा संगत का प्रभाव स्वाभाविक है।

आज भी राम-राज्य की उपमा दी जाती है। यह राम-राज्य क्या था ? रामचन्द्र जब अयोध्या के राजा थे उन्होंने अपनी प्रजा के पालन हेतु कुछ सुन्दर नियमों तथा उपनियमों का निर्माण किया था। वे नियम प्रजा के हित. राज्य की मर्यादा और समाज के कल्याण के लिये बनाए गये थे। उन नियमों को सभी पालते थे। पद,मान और मर्य्यादा का नियमों के पालन में कोई भेद नहीं बरता जाता था।

उन नियमों के अनुसार हर प्राणी सत्य बोलता था। कोई किसी से ईर्षा द्वेष नहीं करता था। समाज के हर जीव को अपनी विशिष्ट मर्य्यादा थी और सभी अपनी मर्य्यादा में रहते थे। यही कारण था कि हर प्राणी प्रसन्न थे। राज में सभी को चैन था। किसी को कोई क्लेश नहीं था।

यही राम राज्य था। उस समय को वही नीति थी। उस नीति के द्वारा ही समाज का जो निर्माण हुआ था राम-राज्य कहलाया।

इसी प्रकार हम यह समझ सकते हैं कि हर प्राणी जो समाज में रहता है किसी न किसी संगत में पड़कर किसी न किसी नीति का अनुसरण करता है।

जैसे एक प्राणी यदि संगत के कारण उन लोगों में जा फँसे जिनका काम झूँठ,फरेव और मक्कर से दूसरों को ठगना है तो वह अपनी उस संगत की नीति के कारण उन्हीं में मिल जाता है। उसकी संगत की नीति द्वारा ही बिगाड़ होता है।

आज कल हम देख रहे हैं कि खाद्य पदार्थों में मिलावट का बोलवाला है। यह क्यों है ? इसका कारण है नीति जो जिस संगत में रहता है उसकी नीति से प्रभावित होकर अपना दृष्टि-कोण वैसा ही बना लेता है।

३. आहार-व्यवहार द्वारा——मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे मनुष्यों ही में उठना और बैठना पड़ता है। जब वह अन्य मनुष्यों के सम्पर्क में जाता है तो उनके साथ आहार-विहार में भी शरीक होता है।

हम सभी जानते हैं कि भारत प्रारम्भ से शाकाहारी देश रहा है। आर्यों का प्रधान भोजन दूध घी, मक्खन आदि था परन्तु पिछली शताब्दी से जब भारत का सम्पर्क अँग्रेज आदि विदेशी जातियों से घनिष्ट होने लगा तो उनकी संगत का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़े बिना न रह सका। शाकाहारी भोजन का महत्व कम होने लगा और माँस, मछली, अण्डा आदि प्रारम्भ हो गया।

चाय, कौफी, सिगरेट आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यद्यपि चाय, कौफी और तम्बाकू इसी देश में उत्पन्न होती हैं परन्तु आज से पचास वर्ष पूर्व तक लोग उनका उपयोग तक करना नहीं जाकते थे।

धीरे-धीरे आहार-विहार के द्वारा संगत का प्रभाव आ गया। आज भारत के गांव-गाँव में आपको चाय और सिगरेट पर्य्याप्त मात्रा में मिल सकती हैं।

बनस्पति घी यद्यपि तेल का ही एक रूप है परन्तु उसका प्रचलन संगत से हुआ है। हम सभी जानते हैं कि ये सभी वस्तुएें हमारे लिए हानिकारक हैं। इनके उपयोग से हमारा स्वास्थ्य बिगड़ता है। परन्तु फिर भी हम असहाय से हो गये। हम छोड़ना चाहने पर भी उनको नहीं छोड़ पा रहे हैं। ऐसा क्यों है ?

इसका उत्तर है संगत। हमारे आहार-व्यवहार के द्वारा

ये वस्तुऐं हमारे जीवन में प्रवेश कर चुकी हैं और इनकी जढ़ें इतनी गहरी जम चुकी हैं कि हम उनके इस प्रकार आदी हो गये हैं कि लाख चेष्टा करने पर भी हम उनको नहीं छोड़ पाते हैं।

क्या आप नहीं जानते कि कोई बालक जन्म-जात से चाय, कौफी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब, अफीम का सेवन करने का आदी नहीं होता है। यह समस्त उसके जीवन में संगत के द्वारा ही प्रवेश करती हैं। उसके साथी ही उसे चाय, सिगरेट आदि का चस्का लगाते हैं। संगत में पड़कर वह इनका प्रारम्भ करता है और धीरे-धीरे वह इनका इस बुरी तरह प्रयोग करने लगता है कि उसे उनके बिना रहना भी कठिन हो जाता है।

यह सब संगत का परिणाम है। हम सभी अपने समाज को इनका शिकार होते हुए देखते हैं। हम सभी जानते हैं कि इनके उपयोग से हमारे समाज का पतन ही हो रहा है। परन्तु न हम स्वयं को बचा पाते हैं और न अपने आश्रित जनोंकी रक्षा कर पाते हैं।

आहार व्यवहार के द्वारा संगत का जो भी प्रभाव प्राणी पर पड़ता है वह मरण पर्यन्त नहीं छूट पाता है।

४. होड़ा-होड़ी के द्वारा—मनुष्य स्वभाव से ही स्पर्धा में रुचि लेता है। उसके मस्तिष्क में एक ग्रन्थि होती है जो होड़ अथवा प्रतिस्पर्धा से तृप्ति अनुभव करती है। इस ग्रंथि के द्वारा भी वह संगत का शिकार हो जाता है।

उदाहरणार्थ एक मनुष्य जब एक मित्र अथवा सहयोगी को नित्य १०० दण्ड और बैठक लगाता देखता है तो उसकी भावना भी उससे होड़ करने की होती है। निदान वह

भी दण्ड बैठक का प्रयोग आरम्भ कर देता है और अपने साथी से अधिक दण्ड बैठक लगाने की चेष्टा करता है। फल स्वरूप इस होडा-होड़ी में उसे व्यायाम का चस्का लग जाता है। इस सङ्गत का प्रभाव उसके शरीर पर अच्छा ही होता है।

दूसरी ओर जब एक शराबी अपने एक मित्र को एक हा ही साँस में १ बोतल शराब पीते देखता है तो वह भी उससे होड़ करने के लिये एक बोतल एक ही साँस में पी डालने की चेष्टा करने लगता है। फल स्पष्ट होता है। वह होड़ में अपने प्राण दे सकता है अथवा शराब को तेजी से अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर डालता है।

इन उपर्युक्त सभी बातों से हम सहज ही समझ सकते हैं कि सङ्गत का मनुष्य पर पूरा प्रभाव होता है।

अब प्रश्न है कि सङ्गत करें अथवा उससे दूर रहें ? हम पहले ही बता चुके हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः सङ्गत से बचा नहीं रह सकता। उसे मनुष्यों में ही रह कर जीवन व्यतीत करना है।

जब सङ्गत बिना किये कोई गति नहीं है तो हमारा धर्म है कि हम उसके प्रति हर क्षण सजग रहें। अपनी सङ्गति का चयन इस प्रकार करें कि हम अपने शरीर और व्यवहार को स्वस्थ रख सकें।

जो मनुष्य अच्छी सङ्गत ग्रहण करते हैं वे अपने वीर्य की रक्षा करने में समर्थ होते हैं। उनको अपनी सङ्गत के द्वारा ही वीर्य की रक्षा करने का बल मिलता है। वे अपने मस्तिष्क को अन्य लाभप्रद कार्यों में लगाते हैं। अपनी प्रतिभा

और कार्य शक्ति का सुन्दर एवं समुचित उपयोग करते हैं। अपने जीवन को आदर्श बताते हैं उनके इस प्रयास का परिणाम उनको सुखद ही रहता है। उनका शरीर पूर्ण निरोग रहता है और वे स्वतः वीर्य रक्षा कर पाते हैं।

शरीर एक क्रमिक यंत्र के समान है। वीर्य इसकी शक्ति है। ओज है। इसी शक्ति के द्वारा केन्द्र समस्त कार्यों का संचालन करता है और उसकी गति विधि पर पूर्ण नियंत्रण रखने में समर्थ होता है। जब तक वीर्य अपने मार्ग से च्युत नहीं होता तब तक वह निरन्तर शक्ति का स्रोत बना रहता है।

वीर्य का स्थान खोपड़ी में शिखा के निचले भाग में होता है। वहाँ वह रक्त में से निकल कर एकत्रित होता है और शरीर की आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर बिन्दुओं के रूप में पुनः प्रविष्ट होकर शरीर की स्फुर्ती और चेतना को सजीव रखने में सहायक होता है।

वीर्य की रक्षा हर प्राणी का प्रमुख कर्त्तव्य है। परन्तु वीर्य की रक्षा करना सरल कार्य नहीं है। हम ऊपर बता चुके हैं कि वीर्य रक्षण में तीन बातें प्रमुख महत्व रखती हैं। इन सभी का यथा सम्भव स्पष्टी करण भी कर दिया गया है।

साथ ही हम पाठकों की उपयोगिता के लिए उन बातों का स्पष्टीकरण कर रहे हैं जिनके द्वारा वीर्य की रक्षा सहज ही की जा सकती है। वे उपयोगी बातें निम्न हैं:—

१. संयमित दिनचर्य्या—हर वीर्य रक्षण करने की इच्छा वाले प्राणी को अपनी दिनचर्य्या बड़ी ही संयमित बनानी ही चाहिये। उसे समय से उठना, खाना, कार्य तथा-शयन करना हो उचित है। दिनचर्य्या की उचित रूप रेखा

बनाये रखने से शरीर को पुष्टता प्राप्त होती है और साथ ही वीर्य रक्षा भी होती है। आपने यह बात प्रायः सुनी अथवा देखी होगी कि संयमित दिनचर्या वाले प्राणी दीर्घ आयु को प्राप्त होते हैं।

२. प्रकृति सेवन—सृष्टि का आधार प्रकृति है। हर जीव, स्थावर, जंगम आदि की रचना पाँच तत्वों से हुई है। यही कारण है सभी को प्रकृति की सदैव आवश्यकता रहती है। कोई भी जीव, पशु पक्षी, पौधा, बिना प्रकृति की सहायता के जीवित नहीं रह सकता। किसी उड़ने वाले पक्षी को पिंजरे में बन्द करके रखा जाये तो वह जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होता है। किसी जल-जन्तु को यदि सूखे स्थान पर रखा जाये तो वह मर जाता है। किसी पौधे को अगर किसी बन्द स्थान पर रखा जाये तो वह नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार यदि मनुष्य को प्रकृति का पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता है तो वह शीघ्र मर जाता है।

निदान शुद्ध वायु, सूर्य की किरणें, शुद्ध जल हर प्राणी के लिये उपयोगी हैं। श्रम के बाद थोड़ी देर खुली वायु में भ्रमण करना श्रम की थकावट को नष्ट कर देता है। शुद्ध जल से किया गया स्नान शरीर शुद्ध रखता है। शुद्ध वायु से शरीर ताजा होता है। सूर्य के प्रकाश में आनन्द आता है। अतः प्रकृति के सेवन से मनुष्य को लाभ होता है। उसका चित्त प्रफुल्लित होता है।

३. आहार—आहार का मनुष्य के शरीर पर गहरा प्रभाव होता है। आहार तीन प्रकार का होता है। वे हैं:—

१. सात्विक—सात्विक भोजन वह होता है जिसको ग्रहण करने से प्राणी में सात्विक बृत्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार के भोजन में शाकाहारी पदार्थ होते हैं। जैसे गेहूं, चावल, दालें, फल शाक, दूध आदि

२. राजसी—वह आहार होता है जो गुणों में अधिक श्रेष्ठ तथा मूल्य में कीमती होता है। इसको ग्रहण करने से प्राणी में राजसी बृत्ति उत्पन्न होती है अधिक चिकनाई वाले और पौष्टिक पदार्थ इस श्रेणी में आते हैं। जैसे गेहूँ, चना, घी, फल, मसाले, तेल, मक्खन, मेवा आदि।

३. तामसी—तामसी आहार वह होता है जिसे ग्रहण करने से प्राणी में तामसीवृत्ति अर्थात् क्रोध अहंकार अथवा मद जागृत होता है। इस प्रकार के आहार में मांस, मछली, अण्डा तेज मसाले, शराब, भाँग, गाँजा आदि नशीले पदार्थ भी सम्मिलित होते हैं।

इन तीनों प्रकार के आहार का प्रभाव प्राणी पर अवश्य पड़ता है। सात्विक आहार के ग्रहण करने से शरीर के किसी भी अङ्ग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। क्योंकि सात्विक आहार में जिन बस्तुओं का उपयोग होता है वे शीघ्र ही पच जाने वाली होती हैं वे आमाशय में जाते ही उचित अवधि ही में पच जाती हैं। उनको पचाने के लिये आमाशय की अथवा शरीर के किसी भी अन्य भाग को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है।

राजसी आहार में स्निग्ध पदार्थ का बाहुल्य होता है। स्निग्ध पदार्थ शरीर के लिये उपयोगी अवश्य हैं परन्तु वे देर में पचने वाले होते हैं। यही कारण है कि उनको पचाने के लिये दीर्घ समय की आवश्यकता होती है। तथा आमाशय को

उनको पचाने के लिये विशेष परिश्रम करना होता है। राजसी आहार के द्वारा शक्ति भी अधिक मिलती है। अत्याधिक शक्ति को शरीर सहज ही ग्रहण नहीं कर पाता और शरीर में इस कारण आलस्य का प्रादुर्भाव हो जाता है।

तामसी आहार बड़ा कठोर होता है। तेज मसालों के द्वारा पाचक संस्थान पर आघात होता है आमाशय की गति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। माँस, मछली, अण्डा आदि को पचाने के लिये स्वाभाविक अग्नि की अपेक्षा अधिक अग्नि की आवश्यकता होती है। निदान शरीर की समस्त शक्ति उसको पचाने में लग जाती है। बिना श्रम किये ही शरीर थकावट अनुभव करने लगता है। आमाशय में विकार उत्पन्न हो जाया करते हैं। मन्दाग्नि हो जाती है।

कठोर भोजन करने से शरीर के ताप में प्रभाव पड़ता है। रक्त एक उचित ताप में शुद्ध रहता है। जब शरीर का ताप बढ़ जाता है तो उसका प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है। अधिक गर्मी पाकर वीर्य अपने स्थान से च्युत हो जाता है। वह मल, मूत्र आदि के द्वारा निकलना प्रारम्भ कर देता है।

इन समस्त बातों को ध्यान में रखते हुये यही उत्तम है कि वीर्य रक्षा के लिये मनुष्य को सात्विक आहार ही ग्रहण करना चाहिये। सात्विक आहार से मनुष्य के रक्त का ताप समान रहता है। वीर्य में उद्विग्नता नहीं आती। मस्तिष्क शान्त रहता है। कामोत्तेजना का प्रादुर्भाव नहीं होता है। वीर्य रक्षण स्वतः ही होता रहता है।

४. परिश्रम—हर प्राणी को परिश्रम करना आवश्यक है। बिना परिश्रम किये मनुष्य अपनी जीविका का उपार्जन

नहीं कर सकता। साथ ही शरीर के विकास को बनाये रखने के लिये परिश्रम आवश्यक होता है। परिश्रम दो प्रकार के होते हैं—

१—शारीरिक परिश्रम वह होता है जिसमें शरीर के अङ्गों पर श्रम का भार पड़ता है। इस परिश्रम के द्वारा मनुष्य के विविध शारीरिक अङ्गों को भार सहन करना होता है। उनकी शक्ति उसमें व्यय होती है और थकावट होती है।

२—मानसिक परिश्रम वह होता है जिसमें शरीर के किसी भी अङ्ग पर कोई भार नहीं होता। परिश्रम करने में समस्त शक्ति मस्तिष्क को लगानी होती है। परन्तु इतना अवश्य है कि मस्तिष्क की थकावट का समस्त शरीर पर असर होता है। जब मस्तिष्क थक जाता है तो समस्त शरीर भी थकावट महसूस करने लगता है।

शारीरिक और मानसिक परिश्रम में एक सबसे बड़ा अन्तर है कि शारीरिक परिश्रम द्वारा शरीर में उष्णता आती है जब कि मानसिक परिश्रम द्वारा शरीर के ताप में कोई अन्तर नहीं होता हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि रक्त की गर्मी पर वीर्य का सन्तुलन बिगड़ जाया करता है। जब वीर्य को उष्ण वातावरण का सामना करना होता है तो वह पतला हो जाता है। अपने स्थान से च्युत होने लगता हैं। तरल होते ही वीर्य शरीर से बाहर जाने का मार्ग खोजना प्रारम्भ कर देता है। वह किसी भी रूप से शरीर से बाहर निकलने लगता है।

निदान, मनुष्य को चाहिये कि वह वीर्य को शरीर के

अन्दर ही रोके रखने की भरसक चेष्टा करे। यह तभी सम्भव है कि शरीर के ताप को बढ़ने न दिया जाये। शारीरिक परिश्रम उतना ही किया जाये जितना शरीर सहन कर सके। शक्ति से अधिक परिश्रम करने से ही शरीर में उष्णता आती है।

५. आराम—शरीर की अपनी एक शक्ति है। हर शक्ति की सीमा होती है। एक सीमा तक ही उसका उपयोग किया जाता है। सीमा से अधिक जिसका उपयोग किया जाता है तो वह वस्तु दिनोंदिन गिरने लगती है। अतः परिश्रम के बाद आराम अवश्यक होता है।

आराम के प्रमुख साधन दो हैं:—

१—मन बहलाव के द्वारा भी शरीर को आराम मिलता है। जिस मनोरंजन से मस्तिष्क का भार नष्ट हो जाये वह सर्वोत्तम साधन होता है। परन्तु मनोरंजन के अनेकों क्लिष्ट रूप उत्पन्न हो चुके हैं। अतः स्वस्थ मनोरंजन करना चाहिये।

२—शयन के द्वारा शरीर की नष्ट हुयी शक्ति की पूर्ति हो जाया करती है। परन्तु शयन की भी एक सीमा है। सीमा से अधिक किया गया शयन शरीर में आलस्य उत्पन्न करता है और शरीर को शिथिल बना कर उसकी कार्य-क्षमता को नष्ट करता है।

इस परिच्छेद में जिन प्रकरणों का उल्लेख किया गया है उन सभी के द्वारा शरीर की शक्ति की रक्षा होती है और वीर्य रक्षण किया जाता है। वीर्य का स्वभाव पारे के समान है। जिस तरह पारा ढाल की ओर स्वतः फिसलता है उसी तरह वीर्य शरीर में तनिक भी ढील आने पर स्वतः बाहर निकलने लगता है।

वीर्य नाश

यद्यपि संसार के समस्त मनुष्य वीर्य की शक्ति से परिचित हैं परन्तु ऐसे बिरले ही है जो नष्ट होने से रोकने की चेष्टा करते हैं। पहले हमें वीर्य नाश होने के कारणों को समझ लेना चाहिये। वे कारण कौन से है जिनके द्वारा वीर्य नष्ट हुआ करता है ? वे कारण निम्न हैं :—

१. मैथुन
२. व्यभिचार
३. असंयम
४. रोग।

वीर्य नाश ऊपर वर्णन किये हुये मुख्यतः चार कारणों से होता है। ये कारण प्रमुख हैं और जब तक इनकी पूर्ण विवेचना नहीं की जाती है तब तक उनको समझने में कठिनाई होती है। अतः उनके स्पष्टीकरण को जान लेना परम आवश्यक है।

१. मैथुन

मैथुन एक प्राकृतिक क्रिया है। इस क्रिया के द्वारा वीर्य नाश होता है। शरीर शास्त्रियों ने सृष्टि की श्रृंखला को बनाये रखने की आवश्यकता समझते हुये तथा शरीर की शक्ति को सम-स्थिति में बनाये रखने की इच्छा से मैथुन को मनुष्य के लिये एक आवश्यक कर्म में स्वीकार किया है।

मैथुन आठ प्रकार के होते हैं। वे हैं—

'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च ।।
एन्तन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ।।'

अर्थात्—स्मरण, कीर्तन, केलि अर्थात् सहवास, सहवास की इच्छा से देखना, गुप्त बात-चीत, अपना बनाने के लिये दृढ़-संकल्प करना, संकल्प के अनुसार प्रयत्न करना, सम्भोग करना ये आठ प्रकार के मैथुन हैं और इनके द्वारा ही ब्रह्मचर्य का नाश होता है।

हम पहले बता चुके हैं कि सम्भोग अर्थात् स्त्री-पुरुष का सहवास शरीर, समाज, प्रकृति आदि सभी दृष्टिकोणों से आवश्यक है। परन्तु इस सहवास को एक मर्य्यादा है और उसका जो उलघन करते हैं वे समाज, प्रकृति अपने शरीर आदि के प्रति पूर्ण रूप से अन्याय करते हैं।

१. प्राकृतिक सहवास—शरीर की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुये शरीरविदों ने मानव जीवन को चार आश्रमों अर्थात चार वर्गों में विभाजित किया है जो मनुष्य इन आश्रमों के अनुरूप अपने जीवन को यापन करता है वह परम सुखी एवं दीर्घ आयु को प्राप्त करता है वे आश्रम हैं—

१—बालकाल तथा किशोर अवस्था — ब्रह्मचर्याश्रम
२—यौवन काल पूर्वार्ध तथा उत्तरकाल — गृहस्थाश्रम
३—अधेड़ावस्था का समय — सन्यासाश्रम
४—वृद्धावस्था का समय — वानप्रस्थाश्रम

इन सभी आश्रमों का विन्यास मानव समाज ने सृष्टि के कठोर नियमों तथा मानव की प्रकृति के अनुकूल ही किया है।

इन सब का स्पष्टीकरण जानने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि ब्रह्मचर्याश्रम हमारे जीवन की आधार शिला है।

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम में बालावस्था तथा किशोरावस्था दोनों ही को सम्मिलित किया जाता है। जब बालक माता के गर्भ से जन्म लेकर पृथ्वी पर आता है तो उसका शरीर पूर्णतया निर्मित नहीं हुआ होता है। यद्यपि उसके समस्त अङ्ग होते हैं परन्तु उनमें से सभी अङ्ग अविकसित होते हैं। निदान उनका विकास परम आवश्यक होता है। विकास का कार्य जन्म के पश्चात ही पूरा होता है।

जन्म के बाद से बारह वर्ष की आयु तक प्राणी बालावस्था में रहता है। इस बारह वर्ष की अवधि में उसके समस्त अङ्ग विकसित होते रहते हैं। उसके शरीर के समस्त विकार प्रकृति के द्वारा दूर होते रहते हैं और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अपने को पूर्ण करते रहते हैं। यही काल बड़े महत्व का है। उसका मस्तिष्क कोमल और अविवेकी होता है। उसके संस्कार इन्हीं दिनों पनपते हैं। बालावस्था में जो संस्कार डाल दिये जाते हैं वे सम्पूर्ण आयु तक पनपते रहते हैं और उनकी छाप जीवन भर प्राणी पर अमिट रहती है।

माता पिता अथवा बालक के संरक्षकों का कर्त्तव्य है कि वे बालवस्था में उसके संस्कारों में उन सद्गुणों को डाल दें जिसके द्वारा आगामी जीवन में वह उनका उपयोग कर सके और अपने जीवन को उपयोगी बना सके।

बालावस्था में सिखाये जाने वाले संस्कार हैं—

१. सत्य भाषण--सत्य जीवन का वह केन्द्र बिन्दु है जिसका जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर गहरा प्रभाव होता है। सत्य भाषण के द्वारा ही सत्य आचरण का अकुर जमता। बालक के अभिभावकों को चाहिये कि वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखें कि उनका बालक झूंठ तो नहीं बोलता है। यदि वे उसे कभी और किसी भी रूप में झूंठ का अवलम्ब लेते हुये देखें तो उसे तुरन्त टोक दें। उसे सच बोलने की शिक्षा दें। झूंठ से डरायें और यदि इसके लिये ताड़ना भी देनी पड़े तो उससे पीछे न रहें।

२. शारीरिक स्वच्छता—स्वच्छता का महत्व न केवल शरीर पर ही होता है वरन जीवन की हर परिस्थिति में स्वच्छता का अपना विशिष्ट स्थान है। शरीर को स्वच्छ रखने से शरीर पुष्ट रहता है अङ्गों का विकास होता है। मस्तिष्क को बल मिलता। स्फूर्ति का अभाव नहीं होता है। जीवन का क्रम ठीक रहता है। मन प्रसन्न रहता है।

३. सदाचार—मनुष्य के जीवन में सदाचार का जो महत्व है वह अन्य किसी वस्तु का कदापि नहीं हो सकता है। सदाचार की प्रेरणा बालकाल में उत्पन्न होने से जीवन भर नहीं छूटती है। यदि बालावस्था ही में उसे बड़ों की आज्ञा पालन, शिष्टाचार आदि का ज्ञान हो जाता है तो वह अपने जीवन भर उनको करता ही रहता है। जिस प्राणी को समाज, प्रकृति, आत्मा, वृद्धजनों अथवा माता-पिता एवं गुरु आदि को मान-मर्य्यादा का विचार रहता है वह सदैव अपने आचार-बिचार को मर्य्यादा ही में रखता है। वह कभी उच्छंल प्रकृति धारण नहीं कर पाता है।

४. ज्ञान—प्रकृति का नियम है कि बालक में ज्ञान को पिपासा जन्म-जात होती है। वह हर वस्तु के बारे में जानना चाहता है। जब तक उसकी जिज्ञासा शान्त नहीं हो जाती है तब तक वह उससे पीछे नहीं हट पाता है। यदि बालक की मनोदशा में सुधार करने को चेष्टा की जाये तो उसकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है। उसके कोतूहलों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। जो कुछ भी वह ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे समझाना चाहिये।

आपने सुना होगा कि बालक को भय, विषाद, शोक, चिन्ता आदि कुछ नहीं सताता। उसे हर नई वस्तु को देख कर कौतूहल होता है। हाथी के सूंड़ क्यों है? आदमो के सूंड़ क्यों नहीं? चाँद रात को क्यों निकलता है? चिड़िया कहाँ रहती हैं? आदि छोटे २ प्रश्नों की जानकारी का वह आग्रह करता है।

वास्तव में उसके प्रश्न बेतुके होते हैं। परन्तु समझदार अविभावकों का यह कर्तव्य नहीं कि वह खोज कर बालक के साथ दुर्व्यवहार करने लगें अथवा डाँट दें। ऐसा करने से वह भयभीत होजाता है। उसकी ज्ञान पिपासा में अविरोध उत्पन्न हो जाता है। उसकी उन्नति रुक जाती है।

जब भी बालक कोई प्रश्न करे चाहे उसका प्रश्न कितना ही बेतुका क्यों न हो अभिभावक का यह कर्त्तव्य है कि उसके प्रश्न का उत्तर दिया जाये। उसे समझाया जाये। प्रारम्भ ही से जब उसे ज्ञान प्राप्ति का चस्का लग जायेगा तो वह अपने भविष्य में स्वतः ज्ञान की खोज में अनुरक्त होगा।

विद्याभ्यास प्रारम्भ कराने की अवस्था लगभग ६ वर्ष

मानी गयी है। जब बालक छः वर्ष का हो तो उसे पढ़ाना प्रारम्भ करना चाहिये। शिक्षा के द्वारा उसका मन लगा रहता है और स्वतः उसका कौतूहल मिटता रहता है।

हमारी शिक्षा पद्धति में एक प्रमुख दोष यह है कि छोटे २ बालकों की शिक्षा अपरिपक्व अध्यापकों के हाथों छोड़ दी जाती है। ये अध्यापक इतने सुलझे हुये नहीं होते हैं कि वे बालकों के मनोविज्ञान को समझ सकें और प्रेम और लगन के साथ उनको पढ़ा सकें। वे अपने अल्प ज्ञान के कारण उनको रटाई में लगाते हैं। बालक की बुद्धि रटाई से मन्द हो जाती है। वह तोते के समान रटे हुये अंशों को दोहरा भर देता है।

इस शिक्षा पद्धति का प्रभाव बालक पर बुरा होता है। वह बिना समझे जो कुछ रटता है उसके सिवा कुछ ज्ञान नहीं पाता। उदाहरणार्थ—२ दूने ४। वह यही जानता है कि २ दूने ४ हो हैं। यदि उससे पूछा जाये २ और २ तो वह शून्य होगा। यद्यपि २+२ का वही अर्थ है जो २ दूने का है।

अभिभावकों तथा शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि वे बालक को केवल रटाई के द्वारा शिक्षा न दें वरन् उसे समझायें और उसे उसका ज्ञान करायें। ज्ञान का सही अर्थ है किसी भी वस्तु के बारे में पूर्ण रूप से जानना। यह तभी सम्भव है जब उसके लिये प्रयत्नशील हुआ जाये। प्रारम्भ में यदि ज्ञान की नींव कमजोर अथवा अपरिपक्व रही तो भविष्य में बालक पढ़ाई के नाम से डरता रहेगा। यह कभी कुशाग्र न हो सकेगा उसका ज्ञान सदैव अधूरा रहेगा।

५. क्रीड़ा—बालकों का स्वभाव मस्त होता है। उनको न किसी का भय होता है और न वे किसी की चिन्ता करते हैं। प्रकृति की देन के अनुसार वे सदैव मस्त रहते हैं। वे अपनी

प्राकृतिक स्फूर्ति के द्वारा सदैव कूद-फांद पसन्द करते हैं। अतः अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे उनको वे सुविधाऐं प्रदान करें जिससे उनकी क्रीड़ा हो सके।

खुले हुये घास वाले मैदान में दौड़ने भागने से बालकों को बड़ी प्रसन्नता होती है। हमारा दुर्भाग्य है कि भारत के लोग जिन घरों में जीवन व्यतीत करते हैं वहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं होता है जहां वे सुविधा पूर्वक क्रीड़ा कर सकें। अतः उनको प्रातः तथा सन्ध्या को किसी उद्यान में ले जाना लाभदायक होता है। वे वहाँ स्वचछन्द खेल सकते हैं। उनको खुली हवा और स्वच्छ वातावरण प्राप्त होगा जो स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक होता है।

बालक स्वभाव रे निडर होते हैं। वे उछल कूद मचाते समय गिरने, चोट लग जाने आदि का कोई भय नहीं करते हैं। यदि वे चुटकोले हो जायें तो उनको भयभीत नहीं करना चाहिये। उनको अनावश्यक त्रास देने से उनके हृदय की निडरता समाप्त हो जाती है और वे समस्त जीवन भयभीत, दब्बू और कायर बने रहते हैं।

६. अनुशासन–जीवन की सफलता की श्रेष्ठ सीढ़ी ही अनुशासन है। जिस प्राणी के जीवन में अनुशासन होता है वह सदैव अपने कार्य में सफल होता है। उसे आगे बढ़ने का पूर्ण अवसर मिलता है। हमारा दुर्भाग्य है कि भारत जैसे देश में इस समय अनुशासन हीनता का बोलबाला है।

अनुशासन वह क्रमिक अनुबन्ध है जिसके द्वारा समाज के सदस्य एक दूसरे से साथ बँधे रहते हैं और व्यक्तिगत रूप से हर प्राणी अपने जीवन को एक क्रम में ढालने की चेष्टा करता है। जैसे नियत समय पर उठना, नहाना, खाना, पढ़ना, खेलना

और शयन करना अनुशासनात्मक जीवन का ही प्रमुख अङ्ग है। जिन लोगों के जीवनोपयोगी कार्य सभी एक नियत अथवा निश्चित समय किये जाते हैं उनका जीवन पूर्ण रूप से सयमित रहता है। उनको कभी समय का अभाव नहीं खटकता है। उनके कोई कार्य अपूर्ण नहीं रहते हैं। वे हर कार्य को निश्चित समय पर करते रहने के कारण सदैव प्रसन्न और मस्त रहते हैं। उनको कभी घबराहट नहीं होती है।

जोवन क्रम को अनुशासन में ढालने की यही अवस्था होती है। बाल अवस्था ही में जब जीवन क्रम अनुशासित हो जाता है तो वह क्रम जीवन पयन्त काम देता है। अतः अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे बालकों को अनुशासन में रहने की आदत डालें।

बारह वर्ष की अवस्था व्यतीत हो जाने के बाद बालक किशोरावस्था में प्रवेश करता है। बालावस्था में बालक पूर्णतया अनभिज्ञ होता है इसलिये उसमें सुसंस्कार उत्पन्न किये जा सकते हैं। परन्तु जब प्राणी बालकावस्था को पार करके किशोरावस्था में पहुंचता है तो वह निर्बोद्ध नहीं होता। उसके बालावस्था के संस्कार उसके साथ होते हैं।

अतः किशोरावस्था में जिस शिक्षा दीक्षा की आवश्यकता होती है बह तनिक महत्वपूर्ण होती है। किशोरावस्था ही वह अवस्था है जब ब्रह्मचर्याश्रम प्रारम्भ होता है। अतः इस अवस्था को प्राप्त करने वाल प्राणी तथा उसके अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे पूर्ण सचेत रहें। इस अवस्था में जो भी क्रम बनता है वही भविष्य में काम आता है।

किशोरावस्था में सिखाये जाने वाले संस्कार निम्न हैं:—

१. समाज बोध—जब बालावस्था को पार करके बालक आगे किशोरावस्था में पदार्पण करता है तो उसे समाज के कर्त्तव्यों का ज्ञान हो जाना चाहिये। किशोरावस्था प्राप्त करते ही वह सामाजिक प्राणी हो जाता है।

बालावस्था में उसका सम्पर्क केवल अपने परिवार के लोगों अथवा केवल उन लोगों तक ही सीमित रहता है जो उसके परिवार के घनिष्ट होते हैं। परन्तु इस अवस्था में उसका सम्पर्क व्यापक होना प्रारम्भ होता है। अन्य सामाजिक जनों से उसका सम्पर्क स्थापित होने लगता है। निदान उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह समाज का ज्ञान करे।

हर्ष के अवसर पर उसे आह्लाद मनाना चाहिये और विषाद के अवसर पर उसे दुःख प्रगट करना अनिवार्य रूप से जानना चाहिए। यदि वह अपने परिवार के हर्ष और विषाद के अवसरों पर समयानुकूल व्यवहार नहीं करता तो समाज में उसका तिरस्कार होगा जो किसी भी प्राणी को सहन नहीं होता है। इस आघात से उसकी रक्षा अनिवार्य है।

समाज बोध का मुख्य आशय है समयानुकूल व्यवहार करना। जैसा समय हो वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

२. शरीर रक्षा—बालावस्था में प्रकृति स्वयं प्राणी की देखरेख करती है। वही उसके शरीर को विकसित करती है। परन्तु किशोरावस्था में यह बात नहीं। प्रकृति की देखरेख और माता-पिता अथवा अभिभावकों की देखरेख का कार्य जब समाप्त हो जाता है तो प्राणी को स्वयं अपने शरीर की रक्षा का भार ग्रहण करना होता है।

किशोरावस्था तक बालक के सम्पूर्ण अंग पूर्ण विकसित हो जाते हैं और धीरे—धीरे बालक अपने अङ्गों के मर्म से

परिचित होने लगता है। जब वह अङ्ग-प्रत्यङ्गों को भली प्रकार समझ जाता है तो वह शर्म करने लगता है। उसे लज्जा करने का अवसर प्राप्त होता है।

परन्तु शरीर को इस विकसित अवस्था से लाभ उठाने का अवसर किशोरावस्था ही में प्राप्त होता है। जब शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों का विकास पूर्ण हो जाता है तो उनको पुष्ट बनाने का प्रश्न उठता है। किशोरावस्था ही वह अवस्था है जब शरीर को पुष्ट बनाया जा सकता है।

अतः बालक को शरीर रक्षा के नियम पालन करने की सीख देना आवश्यक है। बालावस्था में जिसके संस्कार अच्छे डाल दिये जाते हैं वह किशोरावस्था में अपने शरीर के महत्व को समझने लगता है। फिर भी अभिभावक का कर्त्तव्य है कि वह उसको शरीर रक्षा के नियमों से पूरी तरह अवगत करा दे।

किशोरावस्था में शरीर रक्षा के लिये आवश्यक नियम निम्न हैं:—

१—प्रातः उठना
२—व्यायाम
३—शरीर की मालिश
४—स्नान
५—भोजन
६—परिश्रम
७—मनोरंजन

इन नियमों का स्पष्टीकरण करने पर उनका महत्व और भी स्पष्ट हो जाता है। बिना उनके महत्व का ज्ञान हुआ उनके पालन में कुछ न कुछ शिथिलता रह सकती है।

१. प्रात उठना—सूर्योदय के पूर्व उठना तन्दुरुस्ती को

निशानी है। जो प्राणी सूर्योदय के पूर्व ही जागता है वह स्वस्थ शरीर एवं स्वच्छ मस्तिष्क वाला होता है।

सूर्य चेतना का प्रतीक है। जब तक सूर्य का उदय नहीं होता है तब तक प्रकृति का वातावरण बड़ा ही मनोहर रहता है। शुद्ध वायु बहती है। वृक्षादि उस समय रात भर की संचित आक्सीजन को बाहुल्यता के साथ छोड़ते हैं। निदान सूर्योदय के पहले उठने वाले प्राणी को पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन प्राप्त होती है।

किशोरावस्था में जब शरीर का विकास पूर्ण हो जाये और प्राणी स्वयं ही अपने स्वास्थ्य को विकसित करने के लिये उद्योगशील हो तो उसे प्रातः उठना अति लाभदायक है। वह आदत यदि किशोरावस्था में पड़ जाती है तो वह आजन्म नहीं छूट पाती है। इस समय शरीरको जितना भी बलिष्ट बना लिया जाता है वही बल आगामी जीवन में काम देता है।

२. व्यायाम—जब प्रकृति शरीर को पूर्ण कर चुकती है है तो प्राणी का कर्तव्य हो जाता है कि वह उसका विकास स्वयं करे। शरीर का निर्माण पंचतत्वों से होता है। ये पचतत्व थोड़े से यत्न के द्वारा शरीर में व्यायाम के द्वारा ही प्रविष्ट हो सकते हैं।

व्यायाम का कार्य है शरीर के इच्छित अङ्गों की वृद्धि एवं विकास करना। हर प्राणी की अपनी २ मान्यताऐं होती है। निदान उन्हीं मान्यताओं तथा आवश्यकताओं के अनुकूल विशिष्ट अङ्गों के विकास की आवश्यकता होती है। परन्तु प्रधानतया सीना या छाती, जंघाऐं, भुजाऐं एव कन्धे तथा मस्तिष्क को विशेष रूप से विकसित करने की परिपाटी है। इसका कारण है कि यही प्रधान अङ्ग हैं और इनके विकसित

होने का प्रभाव समस्त शरीर पर ही पड़ता है। इनके बिकास से जीवन क्रम में पुष्टता आती है।

व्यायाम कई प्रकार के होते हैं। उनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

१—देसी कसरतें
२—विदेशी कसरतें
१—डम्बिल, मुग्दर आदि
४—देशी अथवा बिदेशी खेल
५—दौड़ना, कूदना आदि
६—तैराकी, घुड़ सवारी आदि
६—आसन

जीवन की श्रृंखला ही कुछ ऐसी है कि उसका लगाव दूसरी वस्तु से अवश्य होता है। प्रकृति का जब कार्य पूर्ण हो जाता है तो प्राणी को स्वतः चेष्टा करनी होती है। आहार का कार्य है आमाशय में जाकर रस बनना और उस रस का कार्य है शरीर को शक्ति प्रदान करना। परन्तु आहार को ग्रहण करके उसे उचित रूप से पचाने की जिम्मेदारी प्राणी की है। इसीलिये व्यायाम का महत्व अधिक होता है क्योंकि यही वह क्रिया है जिसके द्वारा शरीर की यह आवश्यकता पूर्ण होती रहती है।

१—देशी कसरतें

संसार की समस्त सभ्य जातियों में सनातन काल से कसरत की प्रथा चली आ रही है। आर्य जाति संसार की प्राचीन सभ्य जातियों में श्रेष्ठ रही है। यही कारण है कि हमारे देश भारत में भी कसरत सनातन काल से उपयोग की जाती रही हैं।

भारतीय पद्धति के अनुसार श्रेष्ठ एवं महत्व पूर्ण कसरत दण्ड तथा बैठक हैं। ये हजारों वर्ष पुरानी हैं और परीक्षित हैं। इनको सरलता से किया जा सकता है और भारतीय जलवायु में वे परम उपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं।

दण्ड—दण्ड लगाने से प्राणी का सीना चौड़ता है। कन्धे सुडौल होते हैं। भुजाऐं मांसल होती हैं। मेरुदण्ड पर प्रभाव पड़ता है। उसमें लचक आती है। कमर में शक्ति का संचार होता है। समस्त शरीर के विभिन्न अंग प्रभावित होते हैं।

दण्ड लगाने की विधि सरल है उसे प्रयोग करने में विशेष कठिनाई नहीं होती है। उसे सरलता से सीख जा सकता हैं।

विधि—१—चौरस स्थान पर जो खुले वातावरण में हो। जहाँ स्वच्छ वायु अबाद्ध गति से आती जाती हो दण्ड ल ाने को चुनना चाहिये। यदि फर्श कच्चा हो तो अच्छा रहता है।

२— समस्त शरीर को नग्न रखें। केवल कमर पर लंगोट अर्थात कच्छा पहने रहें ताकि वह कमर को कसे रहे और लिङ्ग आदि को भी कसा रखें।

३—उत्तर दिशा की ओर दो ईंटें जमालें। इन दो ईंटों के बीच का फासला दो या ढाई फुट रहना चाहिये अथवा सुविधानुसार उसे कम या ज्यादा करलें। अपने दोनों हाथों को उन ईंटों पर टिका दें।

४—पैरों को हाथों के समानान्तर पीछे की ओर अगले अंगूठे तथा पंजों के बल रखें। इस प्रकार शरीर का अधिकांश

भार हाथों पर और शेष पैरों पर आ जाता है। पैरों को आपस में मिला लें।

५—समस्त शरीर को कस कर कडा बनायें रखें। श्वांस को नासिका के द्वारा ग्रहण करें अथवा निकालते रहें। श्वासें लम्बी तथा गहरी होनी चाहिये।

६—सीने पर जोर डालें और भुजाओं के सहारे शरीर को इतना आगे बढ़ायें कि कोहनियों के सहारे सिर, छाती आदि शरीर का अगला भाग एक चक्कर ले जाये। जिस अवस्था में शरीर आगे की ओर जाये उसी अवस्था में उसे पुनः वापस आ जाना चाहिए। तभी दण्ड को एक क्रिया पूर्ण होती है।

७—जब शरीर को भुजाओं के सहारे आगे की ओर बढ़ायें तो नासिका द्वारा श्वांस को लेना प्रारम्भ करना चाहिये और जब शरीर को उसी दशा में वापिस लायें तो श्वांस को धीरे—धीरे निकालते रहना चाहिए

दण्ड लगाने का प्रारम्भ एक या दो दण्ड से करना चाहिये और क्रम से उसे बढ़ाते हुए एक वर्ष में २५ तक ले जाना चाहिये। इसी प्रकार उसे धीरे-धीरे क्रम से घटाना और क्रम बढ़ाना चाहिए। इसका शरीर पर अच्छा प्रभाव होता है।

बैठक—जिस प्रकार दण्ड का प्रभाव सीने, कन्धे, भुजाओं आदि पर होता है उसी प्रकार बैठक का प्रभाव कमर, जाघें, पिंडलियाँ तथा मेरुदण्ड पर होता हैं। इसकी क्रिया सरल है और आसानी से ग्रहण की जा सकती है।

विधि—१—शरीर को पूरी तरह कड़ा करके खड़े हो जायें। दोनों पैरों का आपस में फासला ६८ इंच से अधिक न रहे।

२—इस कसरत को भी पूर्णतया खुले हुए स्थान पर करें और शरीर को, कमर में लंगोटा अथवा कच्छा) के अतिरिक्त पूरी तरह नग्न ही रखें। दोनों हाथों को शरीर से चिपटाये हुए जंघाओं से स्पर्श करते हुए नीचे की ओर लटकता छोड़दें।

३—शरीर के सम्पूर्ण भार को अगले पंजों पर ग्रहण करें। सीने पर जोर डालें और समस्त शरीर को कड़ा रखते हुए दोनों हाथों की मुट्ठी बांधें धीरे—धीरे बैठें और क्रम से उठ कर खड़े हो जायें।

४—जैसे हो बैठने का क्रम प्रारम्भ करें तो श्वांस को नासिका द्वारा शनैः २ ग्रहण करना प्रारम्भ करें और जब उठना प्रारम्भ करें तो श्वांस को क्रम से निकालते जायें।

बैठक की कसरत से मेरुदण्ड पर प्रभाव होता है। समस्त शरीर की रक्त क्रिया शुद्ध होती है। जाँघें माँसल होती हैं। हैं। आमाशय के विकार नष्ट होते हैं।

देशी कसरतों में प्रमुख स्थान दण्ड बैठक का है। जो भी अन्य कसरतें हैं उनका स्थानीय महत्व है। वे अपने-अपने क्षेत्रों में ही प्रचलित हैं। उनका प्रचार समस्त देश में नहीं है।

२—विदेशी कसरतें

देशी तथा विदेशी कसरतों में प्रमुख भेद परिस्थितियों का है। भारत एक शीतोष्ण देश है, जहाँ वर्ष के आठ महीने गर्मी रहती है और शीत केवल ४ महीने रहता है। न यहां वर्फ गिरती है और न शीत काल में हर समय कोहरा ही छाया रहता है। यहां छः ऋतुऐं होती हैं और उसमें मौसम सदैव सुहावना रहता है।

विदेशों की परिस्थित पूर्णतया भिन्न है। वहां शीत का मौसम लम्बा होता है। महीनों बर्फ गिरती है, कुहरा छाया रहता है। खुले वातावरण में शरीर को खुला रखना मौत को निमन्त्रण देना होता है। अतः योरोपीय देशों में जो भी कसरतें की जाती हैं वे बन्द स्थान पर की जाती हैं ताकि बाहर की बर्फीली वायु सहसा शरीर का स्पर्श न कर सके। इन विदेशी कसरतों का हमारे लिए कोई उपयोग तो नहीं होता है परन्तु उनको जान लेना ठीक ही रहता है। वे सरल, सुगम और शारीरिक क्रिया को गति देने वाली होती हैं। ये क्रियाऐं प्रमुखतया चार हैं।

१—सीधे खड़े होकर किये जाने वाली
२—झुक कर किये जाने वाली
३—लेट कर किये जाने वाली
४—बैठ कर किये जाने वाली

इन समस्त क्रियाओं का मनुष्य के शरीर पर प्रभाव पड़ता है। उनसे शारीरिक अङ्गों को बल मिलता है। पाचन क्रिया आदि ठीक रहती है। रक्त दोष नष्ट होते हैं और शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है।

१—सीधे खड़े होकर किये जाने वाली कसरतें

इस प्रकार की कसरतों से रक्त का संचार प्राकृतिक दशा में बना रहता है। शरीर की लम्बाई बढ़ती है। रीढ़ की हड्डी, सीना, भुजाऐं और जंघाओं पर प्रभाव होता है। रक्त विकार नष्ट होते हैं और नव-जीवन का संचार होता है।

(अ) विधि—१—पृथ्वी पर सीधे खड़े हो जाइये। शरीर को कड़ा रखें और दोनों पैरों को पास-पास रखें अर्थात दोनों के मध्य ६ इंच से अधिक अन्तर न होने दें।

२—हाथों को प्रारम्भ में कमर से चिपटाये हुये रखें। श्वांस को गहरा लें और उसे केवल नासिका से ही निकालते रहने की चेष्टा करें। दीर्घ श्वांस को धीरे-धीरे लें और उसी प्रकार धीरे २ निकालें।

३—शरीर को कड़ा बनाये रखें। दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध लें और धीरे-धीरे उनको एक साथ एक सी दशा में आगे को बढ़ायें और जब दोनों हाथों को सीने के सामने ले आयें तो उनको धीरे २ ऊपर की ओर उठाते जायें।

४–उनको (हाथों को) उठाते हुये कन्धों से ऊपर बिलकुल सीधा ले आयें। फिर धीरे-धीरे उनको उसी प्रकार पुनः कमर के पास लाने की चेष्टा करें जहाँ से उनको उठाना प्रारम्भ किया था। जब हाथ कमर के पास आ जायेंगे तो आपको सुस्ताने का समय है, पैरों को फासला देकर दूर करलें। हाथों को पीछे ले जायें और शरीर को ढीला करलें।

अंग्रेजी में इन दोनों अवस्थाओं को विशेष नामों से पुकारा जाता है। वे हैं :—

ATTENTION इस शब्द का अर्थ है ध्यान। जब इसका प्रयोग कसरत में होता है तो इसका अर्थ है शरीर को कड़ा करके पैरों को बराबर ले आओ।

STAND AT EASE इसका अर्थ है सुविधापूर्वक खड़े हो जाओ। कसरत के समय इसका अर्थ है दोनों पैरों को फासले पर रख कर आराम से खड़ा होना। दोनों हाथों को कमर के पीछे ल जाकर एक दूसरे से पकड़ लेना तथा शरीर को ढीला रखना ही इसकी प्रमुख क्रिया है।

(ब) विधि—(१) पहले अटेन्शन खड़े हो जायें ।

(२) शरीर को एक दम कड़ा रखें ।

(३) श्वाँस को धीरे-धीरे नासिका से ग्रहण करें और उसी क्रम से निकालें । गहरी श्वांसें लें ।

(४) हाथों को कड़ा रखें और हाथ के पंजों पर पूरा जोर डाले हुये उनको खोलें और धीरे-धीरे उङ्गलियों को पहले दायें और फिर बायें ओर मोड़ें ।

(५) फिर हाथों को आगे बढ़ाकर छाती के सामने लायें । उन पर पूर्ण जोर डाले रहें । हाथों को इधर-उधर मोड़ें ।

(६) हाथों को यथा स्थान ले आयें और सुस्ताने के लिये कुछ देर स्टैन्ड एट इज खड़े हो जायें ।

(स) विधि—इस कसरत के द्वारा शरीर से सभी अङ्गों पर विशेष कर आमाशय पेट और जाँघों पर प्रभाव होता है ।

१—पहले अटेन्शन की स्थिति में खड़े हो जायें ।

२—श्वांस दीर्घ, और क्रम से लेना प्रारम्भ करें ।

३—हाथों को दोनों ओर कमर के पास चिपका रहने दें । फिर धीरे २ हाथों को आगे बढ़ायें और उनको कन्धों के सामान्तर लायें । तत्पश्चात हाथों को धीरे-धीरे पीछे की ओर लायें । अच्छा तो यही हो कि हाथों की मुट्ठियाँ बांधे रहें ।

(४) इस कसरत को करने के बाद थोड़ी देर सुस्ता लें ! इस दशा में स्टैण्ड एट इज खड़े हो सकते हैं । तत्पश्चात पुनः अटैन्शन खड़े हो जायें । दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बांध लें । शरीर को कड़ा रखें और दोनों भुजाओं को गोलाकार दशा में

आगे पीछे को ओर घुमाते रहें। उसी तरह वरावर घुमावें जैसे पखे की पंखुड़ियाँ घूमती हैं।

(५) उसके बाद शरीर को स्टैण्ड एट इज करें। कसरत करने के बाद पसीने को नरम कपड़े से पोंछ कर वस्त्र पहन लें।

ऊपर दी हुयी तीनों प्रकार की कसरतों से शरीर को पर्याप्त व्यायाम मिल जाता है और अंगों का विकास होता है। प्रारम्भ में कोई भो व्यायाम अधिक देर तक अथवा अधिक थकावट उत्पन्न करने की इच्छा से नहीं करना चाहिये। धीरे-धीरे प्रारम्भ करें और समय को परिस्थितियों के साथ बढ़ाते जायें।

२–झुककर किये जाने वाली कसरतें

इन कसरतों के द्वारा समस्त शरीर और विशेष कर रीढ़ की हड्डो की कसरत होती है। मेरुदण्ड अर्थात रीढ़ की हड्डी का एक विशेष महत्व है। उसकी लचक एवं चेतना शरीर की स्फुर्ति को व्यक्त करती है। निदान समस्त शरीर विज्ञान के शास्त्रियों ने मेरुदण्ड को लचकोला एव दृढ़ बनाने पर सदैव जोर दिया है।

(अ) विधि–१—सर्व प्रथम अटैन्शन खड़े हो जायें।

२–अपने दोनों हाथों को कड़ा वनाये हुये धीरे—धीरे उनको उठाते हुये सिर के ऊपर ले जायें।

३—जब दोनों हाथ सीधे हो जायें और उनके बीच में सिर आ जाये तो धीरे-धीरे कमर पर जोर डालें और फैले हुये हाथों सहित नीचे की ओर झुकें।

४—कमर पर जोर डालने से शरीर कमान की तरह

होगा। कमर के ऊपर वाला भाग झुक जायेगा और हाथों की उङ्गलियों के अग्रभाग पृथ्वी को स्पर्श कर सकने में समर्थ होंगे।

५—इस क्रिया को पूर्ण करने में समय काफी लग सकते है। अतः शनैः शनैः इसका अभ्यास करते रहना चाहिये। जैसे ही शरीर को कुछ भी असावधानी हो तुरन्त कसरत को बन्द कर दें। अभ्यास का क्रम और अवधि धीरे-धीरे बढ़ाते रहें। जब यह कसरत सिद्ध हो जाये तो इसे प्रारम्भ में थोड़े समय से शक्ति के अनुसार अवधि तक बढ़ा सकते हैं।

इस कसरत को करने से उत्पन्न होने वाले लाभों की यदि तालिका बनायी जाये तो वह बहुत लम्बी होगी। उसके मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं :—

लाभ—१—मेरुदण्ड शक्तिशाली होता है।

२—रक्त दोष नष्ट होते हैं। शुद्ध रक्त के द्वारा शरीर के अंगों को पूर्ण विकसित होने का अवसर प्राप्त होता है।

३—वीर्य की रक्षा होती है। बुद्धि कुशाग्र होती है।

४—शरीर के समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(ब) विधि—१—शरीर को अटैन्शन करो।

२—दोनों हाथों को ऊपर सिर के ऊपर ले जाओ और तब कमर के ऊपर वाले भाग को झुकाते हुये नीचे को इस तरह लाओ कि हाथों से पैर के अँगूठों को पकड़ा जा सके।

३—इस क्रिया को धीरे—धीरे करो। पैर का अँगूठों को केन्द्र रखो। जितना झुक सको उतना ही झुको। जब शरीर में लचक पैदा हो जाये और अँगूठों को छूना आसान हो तभी उसे छुओ। इस क्रिया में समय की चिन्ता मत करो।

४—जिस तरह नीचे झुकने की चेष्टा करनेके लिये प्रयत्न किया है उसी प्रकार धीरे-धीरे ऊपर उठो।

५—सुस्ताने के लिये क्रिया के बाद कुछ देर स्टैन्ड एट इज खड़े रहो।

इस कसरत मे भी सभी वही लाभ प्राप्त होते हैं जो ऊपर वाली (अ) विधि से होती है। इन दोनों क्रियाओं में केवल इतना ही अन्तर है कि पहली वाली कसरत के द्वारा हाथों और पैरों के बीच अन्तर अधिक था। अर्थात कमर का झुकाव फैला हुआ था। इस (ब) विधि में हाथों और पैरों को निकट रहना होता है और कमर का झुकाव अपेक्षा कृत होता है।

३—लेटकर किये जाने वाली कसरतें

शरीर को लचीला एवं स्फुर्तिमय बनाने के लिये कई कसरतें लेट कर भी की जाती हैं। इन कसरतों का प्रभाव शरीर के हर अङ्ग पर होता है। लेट कर की जाने वाली कसरतें प्रायः स्त्रियों के लिये होती हैं। क्योंकि महिलाऐं अधिक कष्ट प्रद अभ्यासों को सहज ही सहन नहीं कर पाती हैं।

(अ) विधि—१—समतल पृथ्वी पर शरीर को कड़ा करके लेटें।

२—दोनों पैरों को मिलाये रखें। हाथों को कमर के पास चिपकाये रखें और शरीर को कड़ा रखें।

३—दोनों हाथों से कमर को पकड़ लें। धीरे-धीरे पहले एक पैर को ऊपर उठायें और उसे कमर की सीध में ले आयें फिर धीरे-धीरे उस पैर को नीचे लायें। इसी प्रकार क्रम से दोनों पैरों को ऊपर लायें।

४—स्वांस धीरे-धीरे गहरी लें और फिर शरीर को थोड़ी

देर तक ढीला छोड़ने के बाद आराम करें।

(ब) विधि—१-समतल भूमि पर लेट जायें और शरीर को कड़ा रखें।

२—हाथों को कमर के पास चिपटाये रखें और दोनों पैरों को आपस में मिला रहने दें।

३—कमर को दोनों हाथों से पकड़ लें और निचले धड़ को पैरों के साथ-साथ ऊपर उठाने की चेष्टा करें। ध्यान रहे कि ऊपर वाला धड़ पृथ्वी से अच्छी तरह चिपटा हुआ रहे।

४—जब पैरों के अगले पंजे ऊपर कमर के समानान्तर आ आयें तो कमर के साथ उनको थोड़ा-थोड़ा सिर के पास तक ले जाने की चेष्टा करें। मगर पैरों की कड़ाई को बनाये रखें। धीरे-धीरे इस क्रिया का अभ्यास बढ़ाते जायें यदि पैरों के पंजे सिर के पास वाली पृथ्वी पर जाकर टिकने लगें तो क्रिया को सिद्ध समझें।

५—जिस प्रकार पैरों को पृथ्वी पर से उठाकर ऊपर धीरे-धीरे ले जायें उसी तरह उनको पुनः वापिस लायें। क्रिया को धीरे-धीरे करें। जितनी सहन हो सके वहीं तक करें। अभ्यास को शनैः बढ़ायें। एक साथ सिद्ध करने की चेष्टा न करें।

६—श्वांस का क्रम बनाये रखें। गहरी श्वांस नाक के द्वारा लें और नाक के द्वारा ही निकालें।

इन अभ्यासों से होने वाले लाभों का उल्लेख हम निम्न प्रकार कर सकते हैं :—

लाभ—१-रीढ़ की हड्डी को शक्ति मिलती है। शरीर को कड़ा रखने तथा उसे समतल पृथ्वी से चिपटाये रखने में उसके जोड़ स्वस्थ होते हैं।

२—पैरों को ऊपर उठाने से रक्त की गति में अवरोध होता है चाल उल्टी हो जाती है। रक्त शुद्ध होता है और शरीर के हर अङ्ग को नवीन रक्त के साथ बल एवं स्फुर्ति प्राप्त होती है।

३—वीर्य की रक्षा होती है। आमाशय के विकार नष्ट होते हैं। पाचक संस्थान को नवीन शक्ति प्राप्त होती है। मस्तिष्क एवं गुदा सम्बन्धी रोगों नाश होता है।

४—शरीर में नवीन स्फुर्ति आती है। बल एव ओज बढ़ता है। मस्तिष्क की शक्ति बढ़ता है।

४—बैठकर किये जाने वाली कसरतें

कुछ विदेशी कसरतें बैठकर की जाती हैं। इन कसरतों की बहुत कुछ क्रिया हमारे आसनों से मिलती हैं। परन्तु उनको हम आसनों के समकक्ष नहीं रख सकते। उनसे प्राप्त होने वाला लाभ आसनों के समक्ष नगण्य है। निदान इन कसरतों का लाभ हमारे शरीर पर अवश्य अच्छा होता है।

(अ) विधि—१—शरीर को अटेन्शन की स्थिति में रख कर पहले खड़े हो जायें।

२—घुटनों के बल बैठ जायें। शरीर का समस्त भार अगले पंजों पर डाल दें। दोनों हाथों को कमर पर रखें। फिर समस्त शरीर के भार को एक पैर पर सम्भालते हुए दूसरे पैर को धीरे-धीरे आगे बढ़ायें और उसे सीधा करें।

३—श्याँसें दीघ और क्रम से लेते रहें। श्वांसों को लेते में जल्दबाजी न करें। जब दोनों पैरों से पर्याप्त कसरत कर चुकें तो खड़े होकर स्टेण्ड एट ईज स्थिति में थोड़ा सा आराम लें लें

(ब) विधि–१—समतल पृथ्वी पर दोनों पैरों को आगे की ओर फैला कर बैठ जायें। शरीर को पूरी तरह कड़ा बनाये रखें।

२—दोनों हाथों से कमर को पूरी तरह पकड़े रखें और अपने ऊपर वाले धड़ को धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ायें और सिर को पैरों के पंजों के पास तक ले जाने की चेष्टा करें। जहां तक सिर को ले जाना सम्भव हो वहीं तक ले जायें और जहाँ तनिक भी कष्ठ अनुभव होने लगे वहीं से छोड़ दें। अर्थात् उतनी ही क्रिया को करें।

३—धीरे-धीरे अभ्यास को बढ़ाते जायें। एक ही साथ अथवा शीघ्र ही क्रिया को पूर्णतया सिद्ध करने की चेष्टा न करें। धीरे-धीरे समय की अवधि और क्रम को बढ़ाते रहें।

४—श्वाँस सम सम और गहरा रखें। नाक के द्वारा ही साँस ग्रहण करें और बाहर निकालें। ऐसा करने से शरीर लाभ होता है।

लाभ-१–इस प्रकार के व्यायामों का अभाव कमर और उसके निचले भागों पर अच्छा होता है। पैरों और जांघों को नई शक्ति प्राप्त होती है।

२—गुदा सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। आमाशयके विकारों का नाश होता है। पाचक संस्थान को बल मिलता है।

३–रीढ़ की हड्डी का निचला भाग इससे प्रभावित होता है। उसके विकार नष्ट होते हैं और उसके निरोग होने से शरीर को एक अनुभूति होती है। मस्तिष्क की शक्ति में बल प्राप्त होता है।

४—श्वाँस संस्थान के विकारों का नाश होता है। फेंफड़े

मजबूत होते हैं। रक्त शुद्ध होता है। समस्त अङ्गों को नवीन शक्ति एवं ओज प्राप्त होती है। वीर्य की रक्षा होती है।

हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि विदेशी कसरतें यद्यपि भारत के अनुकूल नहीं है परन्तु हमारे अधिकतर पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुए लोग उनको केवल इसलिए ही करना प्रसन्न करते हैं क्योंकि वे विदेशी हैं। हमारे देश की जलवायु वर्ष के अधिकांश भाग में ऐसी रहती है कि उसमें किसी प्रकार भी शरीर को रखा जा सकता है।

शुद्ध वायु जीवन के लिए प्राण है। विदेशों में शीत का कोप होने के कारण शरीर को वायु के स्पर्श तक से वचाने की जरूरत होती है। मगर भारत में शुद्ध वायु को शरीर में अधिक से अधिक लगाना हितकर होता है। निदान भारत में इन विदेशी कसरतों का प्रचार होने की कोई आवश्यकता भी महसूस नहीं होती है।

३—डम्बिल, मुग्दर आदि क्रियायें

सनातन काल ही से मनुष्य फेंफड़ों और सीने का महत्व समझता आया है। यह सत्य भी है कि जिस मनुष्य का सीना चौड़ा एवं फेंफड़े निर्दोष एवं बली होते हैं वह शीघ्र ही रोगी नहीं होता है।

यही कारण है कि मनुष्य जाति सीने को चौड़ा और अपने फेंफड़ों को रोग रहित रखने के लिये सदैव से प्रयत्नशील रही है। डम्बिल, मुग्दर आदि की क्रियाओं का पूर्ण प्रभाव सीने पर होता है।

डम्बिल

डम्बिल विदेशी शब्द है। इस कसरत का महत्व भी विदेशों की परिस्थितियों के ही अनुकूल है। डम्बिल दो प्रकार के होते हैं।

१. स्थूलाकार—यह डम्बिल लकड़ी के होते हैं और इनका आकार बहुत कुछ मुग्दरों के समान होता है। इनका ऊपरी भाग पतला होता है और उसे हत्था कहते हैं। हत्थे को आसानी से पकड़ा जा सकता है। नीचे का भाग क्रमशः भारी और मोटा होता है। ये दो-ढाई फीट से अधिक लम्बे नहीं होते और इनका वजन १०-१५ पौंड से ज्यादा नहीं होता है। यह जोड़े के रूप में ही प्रयोग किये जाते हैं।

२. स्प्रींगाकार—यह लोहे के होते हैं। इनमें दो भाग होते हैं और वे बीच में स्प्रिगों के द्वारा जुड़े होते हैं। इन स्प्रिगों पर जब भार पड़ता है तो वे दोनों भागों को क्रमशः निकट लाने की चेष्टा करती हैं। स्प्रिगों पर भार डालने में कलाई पर बल डालना होता है। हाथ के पंजे से उसे दबाना होता है। ये भी जोड़े में ही प्रयोग किये जाते हैं।

दोनों प्रकार के डम्बिलों को करने की क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार मुग्दर को घुमाया जाता है उसी प्रकार डम्बिलों को घुमाते हैं।

विधि—१—मूठदार डम्बिलों को हत्थे से पकड़ें और स्प्रिगदार को हाथों के दोनों पंजों में दबालें। शरीर को अटेंन्शन रखें।

२—पहले सीधे हाथ के डम्बिल को उठाकर कंधे के ऊपर

सीधा खड़ा करें और उसे सिर के अगले भाग की ओर से निकालते हुये पीठ के पीखे की ओर ले जायें और बगल के पास से निकाल कर कमर के पास तक ले आयें। यदि स्प्रिगदार है तो उसे अच्छी तरह दबाने की चेष्टा करें और उसे पूरी शक्ति से दबाते हुये कोहनी मोड़कर कन्धे के बरावर लायें और फिर हाथ को बिलकुल सीधा करें।

२—इसी प्रकार पुनः बांये हाथ से हत्थेदार डम्बिल को सिर के सामने से पीठ के पीछे ले जाकर बगल के निचले भाग से निकालें। जब दोनों हाथों से निकालने की प्रैक्टिस हो जाये तो दोनों कन्धे के पास खड़ा रखें और एक साथ दोनों का अभ्यास करें।

३—स्प्रिगदार डम्बिलों को भी इसी प्रकार दोनों हाथों से दबाते हुये आगे, पीछे, ऊपर, नीचे करें। ध्यान रखें कि शरीर का कोई भाग शिथिल न होने पाये। हाथ के पंजों पर शक्ति बराबर लगी रहे। वरना हो सकता है कि हाथ की पकड़ ढीली होते ही स्प्रिग झटका पाकर हट जाये और हाथ से डम्बिल गिरने के कारण चोट लग जाये।

४—शरीर को पूरी तरह कड़ा बनाये रखें और शक्ति के अनुसार ही अभ्यास करे। धीरे-धीरे अभ्यास को बढ़ाते जायें। कभी यह गिनती का ध्यान न करें कि इतने हाथ निकाले वरना यह देखें कि व्यायाम उचित रूप से हुआ है। शरीर के विशिष्ट अङ्ग पर प्रभाव पड़ा अथवा नहीं? व्यायाम संख्या के लिए नहीं वरन लाभ के लिये होना चाहिए।

मुग्दर

डम्बिल का जो रूप होता है वही रूप मुग्दर का है।

मुग्दर लम्बाई में तनिक बड़े और वजन में भारी होते हैं। शक्ति के अनुसार ही वजनदार मुग्दरों का प्रयोग किया जाता है। आमतौर से बारह सेर या पन्द्रह सेर की जोड़ी प्रयोग की जाती है।

मुग्दर के हाथ निकालने की क्रिया डम्बिलों के समान ही है। शरीर को कड़ा करके पहले एक हाथ के मुग्दर को कन्धे की सीध में खड़ा करके सिर के सामने से घुमाते हुए उसे पीठ के पीछे ले जाते हैं और वगल के नीचे से ले जाकर पुनः कन्धे की सीध में ले आते हैं। इसी प्रकार दूसरे हाथ से मुग्दर निकालते हैं। जब दोनों हाथों से मुग्दर घुमाने का अभ्यास हो जाता है तो एक साथ दोनों मुग्दरों को घुमाया जाता है। इस प्रकार से अभ्यास को क्रमशः बढ़ाना चाहिए। कभी एक दम किसी भी कसरत को अधिक नहीं करना चाहिए।

इन कसरतों के लाभ समान हैं। जिस प्रकार इनकी क्रिया में कोई विशेष अन्तर नहीं है उसी प्रकार इनके लाभों में भी कोई अन्तर नहीं है।

लाभ—१—इन कसरतों से कलाई, भुजाओं और हाथ के पंजों पर अधिक जोर पड़ता है। उंगलियों से लेकर कन्धों तक अर्थात् पूरे हाथ में शक्ति का संचार होता है।

२—फेंफड़े मजबूत होते हैं। सीना चौड़ता है। मेरुदण्ड पर जोर पड़ता है। उसकी लचक बढ़ती है। समस्त मेरुदण्ड को नवीन बल प्राप्त होता है। उसमें नव-शक्ति का संचार होता है।

३—रक्त शुद्ध होता है। समस्त अङ्ग सुडौल होते हैं। वीर्य की रक्षा होती है। कमर और जांघें पुष्ट होती हैं।

४—स्वांस नालिका स्वच्छ रहती हैं। आमाशय सम्बन्धी समस्त विकार नष्ट होते हैं। रोगों का नाश होता है।

४–देशी अथवा विदेशी खेल

शिक्षा शास्त्रियों ने मानव के मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए कुछ खेलों की रचना की है। वे जानते थे कि मनुष्य स्वभाव उपेक्षा करना है। निदान वह शुष्क कसरतों में शायद रुचि न ले सके। इसी कारण उन्होंने खेलों को जन्म दिया। खेलों में पर्याप्त मनोरंजन के साथ-साथ पूर्ण कसरत की भी अवस्था होती है। देशी व विदेशी खेल दोनों ही का जन्म इन्हीं प्रेरणा एवं उद्देश्यों के साथ हुआ है।

देशी खेल प्रमुखतया निम्न हैं—

१—कबड्डी जिसे दक्षिण में हु टु टु टु या डु डु कहते हैं।

२—गिल्ली दण्डा

३—आंख मिचौनी

१. कबड्डी—कबड्डी एक सामान्य खेल है। इसे कितने ही खिलाड़ी लेकर खेला जा सकता है। समतल बलुई भूमि पर इसे खेलने की परिपाटी है ताकि खिलाड़ियों के चोट न लगे। बहुधा इस खेल के खिलाड़ी पृथ्वी से घिसटते हैं अथवा घसीटे भी जाते हैं। यदि जगह सख्त होती है तो उनके शरीर खुरच जाने का भय रहता है। इसलिये नरम पृथ्वी पर यह खेल खेला जाता है।

मैदान के बीच में एक रेखा खींच लेते हैं। इस सीधी रेखा को पाला कहते हैं। इस रेखा के दोनों ओर दोनों दल खड़े होते हैं। खिलाड़ियों को दो समान दलों में विभाजित कर लिया जाता है। उनमें से प्रत्येक का एक नेता होता है।

खेल का आरम्भ करने के लिए एक दल का एक खिलाड़ी

फाला पार करके दूसरे दल की सीमा में प्रवेश करता है। वह अपने मुँह से बिना श्वाँस तोड़े हुये हुत-हुत, डू डू अथवा कबड्डो कबड्डी का उच्चारण करता रहता है और दूसरे दल के खिलाड़ियों को छूने की चेष्टा करता है। दूसरे दल वाले उसकी पहुंच से अपने को बचाये रखने की चेष्टा करते हैं और साथ ही इस घात में रहते हैं कि उसे पकड़ सकें।

जब तक उसकी श्वाँस पूरी न हो तब तक उस खिलाड़ी को फाला पार करके अपने दल की सीमा में आ जाना चाहिये अन्यथा स्वाँस टूटने पर उसे दूसरे दल वाले छू लें तो वह मरा हुआ माना जाता है। दौड़ने, उछलने, स्वाँस की दीर्घता पर यह खेल पूरी तरह आधारित है।

२. गुल्ली दण्डा—इस खेल में लकड़ी की एक गुल्ली जो बीच में मोटी गोलाकार और किनारों पर नुकीली होती है आवश्यक होती है तथा एक डण्डा होता है जो २–२।। फुट लम्बा गोलाकार और नीचे से कुछ पतला नुकीला होता है जरूरी होता है एक समतल मैदान में यह खेल प्रारम्भ किया जाता है। पृथ्वी पर एक लम्बाकार २ इंच गहरी नाली सी खोदते हैं जिसके ऊपर रखकर गिल्ली को डण्डे की सहायता से पृथ्वी के ऊपर फेंका जाता है।

खिलाड़ियों को दो समान दल में बाँट लेते हैं और क्रम से एक दल गुल्ली फेंकता है और दूसरा उसे रोकता या लपकता है। गुल्ली यदि फेंकते समय लपक ली जाती है तो फेंकने वाला खिलाड़ी आउट हो जाता है। अन्यथा वह नाली पर डण्डा रखता है और दूसरे दल का एक खिलाड़ी गुल्ली को उस स्थान से जहाँ वह पृथ्वी पर गिरती है निशाना साध कर डण्डे को

ओर फेंकता है। यदि डण्डा छू जाता है तो खेलने वाला खिलाड़ी आउट अथवा मरा समझा जाता है अन्यथा वह गुल्ली को क्रम से तीन बार उछाल-उछाल कर डण्डे से मार कर दूर से दूर पहुँचाने की चेष्टा करता है। इस दूरी पर अंक माँगे जाते हैं। यदि दूसरी पार्टी उसे स्वीकार न करे तो अंकों के अनुसार नाली से गुल्ली की दूरी तक का स्थान डण्डे से नापा जाता है। यदि दूरी मांग के अनुसार सही या कम होती है तो वही खिलाड़ी खेलता रहता है अन्यथा वह मरा समझा जाता है।

इसी प्रकार क्रम से दोनों दल खेलते रहते हैं और उनकी हार-जीत का फैसला उन अंकों पर होता है जो वह गुल्ली को फेंक कर प्राप्त करते हैं।

३. आँख-मिचौनी—आँख मिचौनी खेल के लिये समतल या पेड़ों और झाड़ियों वाला स्थान उचित होता है। एक खिलाड़ी निश्चित स्थान पर बैठ जाता है और वह निर्णय के अनुसार एक खिलाड़ी की आँखें बन्द करता है। अन्य सभी खिलाड़ी दौड़ कर वृक्षों अथवा झाड़ियों अन्यथा अन्य सुविधा जनक स्थानों पर छिप जाते हैं। जब सब खिलाड़ी छिप जाते हैं तो आँखें खोल दी जाती हैं।

आंखें खुलते ही खिलाड़ी अन्य खिलाडियो की टोह में जाता है। अवसर पाते ही छिपे हुये खिलाड़ी अपने-अपने छिपने के स्थानों से निकल कर उस बैठे हुए खिलाड़ी को स्पर्श करते हैं। जो भी खिलाडी स्पर्श करने से पहले छूने की टोह में घूमने वाले के हाथों आ जाता है वह दाव देने का भागी होता है।

यह खेल इसी प्रकार चलता रहता है।

भारतीय खेलों की यही विशेषता है कि वे बिना किसी विशेष व्यय अर्थात् उपक्रम के खेले जाते हैं। देशी खेलों को खेलने के लिये खुला मैदान होना चाहिये। वास्तव में देखा जाये तो यह खेल क्रीड़ा के साथ कसरत हैं।

विदेशी खेल

विदेशों से हमारे देश में जिन खेलों का आकर प्रचुरता के साथ प्रचार हुआ है वे निम्न हैं:—

१—हाकी
२—फुटबोल
३—क्रिकेट
४—वोली बोल
५—टैनिस

इन सभी खेलोंके अपने नियम हैं। आजकल समस्त विश्व में इनका प्रचार हो गया है अतः इनको खेलने के लिये नियम बना दिये गये हैं जिनका कड़ाई के साथ पालन होता है। इन खेलों को प्रोत्साहन देने के लिये अन्तराष्ट्रीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय इत्यादि प्रतियोगिताऐं भी आयोजित की जाती हैं। देश इनमें भाग लेना अपना गौरव समझते हैं।

१. हौकी—एक सीमीत मैदान में यह खेल खेला जाता है। दो दल होते हैं और उनमें ग्यारह-ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। हर खिलाड़ी के पास एक हौकी होती है। दोनों सिरों पर दो गोल होते हैं। गेंद को हौकी से मार कर गोल की ओर फेंका जाता है।

दोनों दल के खिलाड़ी गेंद को अपने गोल को ओर जाने से रोकते हैं। वे दूसरे दल के गोल की ओर फेंकने की चेष्टा करते हैं। इस खेल की निगरानी के लिये दो रैफ़री होते हैं जो दोनों दलों के खिलाड़ियों को अनुशासन में रखते हैं और अपराधी के दण्ड की व्यवस्था करते हैं। विजय का निर्णय गोलों की सख्या पर होता है।

२. फुट बौल—हाकी की तरह फुट बौल में भी दो दल होते हैं और प्रत्येक दल में ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। दोनों ओर दो गोल होते हैं। गेंद को पैर को ठोकर से मारा जाता है। हर दल गेंद को अपने गोल में जाने से रोकता है और प्रति द्वन्दी के गोल की ओर पहुँचाने की चेष्टा करता है।

खेल का नियंत्रण रखने के लिये दो रैफ्री होते हैं जो नियम भङ्ग करने वाले को दन्डित करते हैं। खेल का निपटारा गोलों की संख्या से होता है।

३. क्रिकेट—इस खेल में भी दो दल होते हैं और प्रत्येक दल में ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। चौरस मैदान खेल के लिये चुना जाता है। मैदान के बीच में विकेट गाड़े जाते हैं। दोनों ओर ३—३ विकेट गाड़े जाते हैं और विकेटों के ऊपर गिल्ली की शक्ल के दो—दो लकड़ी के टुकड़े रखे जाते हैं जिन्हें बेल्स कहते हैं। इस खेल में एक दल खेलता है और दूसरा दल उसे खिलाता है।

खेलने वाले दल के दो खिलाड़ी सर्व प्रथम मैदान में जाते हैं। उनके पास बल्ले होते हैं। प्रत्येक एक-एक विकेट के सामने खड़ा होता है। दूसरे दल वाले मैदान में फैल जाते हैं। खिलाने वाले दल का एक खिलाड़ी गेंद फेंकता है वह गेंद को

विकेट तक पहुँचाने की चेष्टा करता है और खेलने वाला खिलाड़ी बैट की सहायता से उस गेंद को विकेट के पास जाने से रोकता है और गेंद को मार कर दूर फेंकता है। गैंद जितनी दूर जाती है उतने ही रन खिलाड़ी को मिलते हैं। रन से ही हार-जीत का निर्णय होता है।

४. बौली बोल—बौली बौल का खेल दो दलों में खेला जाता है जिसमें प्रत्येक दल में अधिक से अधिक नौ और कम से कम छः खिलाडी भाग लेते हैं। सीमित मैदान के बीच में एक जाल ऊंचाई पर टांगते हैं। गेंद को हाथों और कलाई के ऊपरी भाग से मारा जाता है। यदि किसी दल का कोई खिलाड़ी गेंद को जाल के पार नहीं पहुँचा पाता अथवा सीमित क्षेत्र से बाहर फेंकता है तो पाइन्ट हो जाता है। इस खेल में पाइन्टों की गणना होती है और उसी के अनुसार हार-जीत का फैसला होता है।

५. टैनिस—इस खेल में भी एक सीमित क्षेत्र होता है और उसके बीचों बीच एक जाल टांगा जाता है। दो दल होते हैं और प्रत्येक दल में दो खिलाड़ी होते हैं। गेंद को रैकिट की चोट से मारा जाता है। हार जीत का निर्णय पाइन्टों से होता है। जो भी खिलाड़ी गेंद को नैट के पार भेजने अथवा क्षेत्र से बाहर फेंकता है वह हारता है।

इन सभी खेलों के अन्तरराष्ट्रीय नियम हैं। उन सभी नियमों का कड़ाई के साथ पालन करना अनिवार्य है।

लाभ—खेलने की प्रणाली देशी अथवा विदेशी खेलों की चाहे कुछ भी रही हो परन्तु इतना स्पष्ट है कि उनके लाभ मनुष्य के लिये समान हैं।

१-मनुष्य को स्वच्छ वायु में मनोरंजन के साथ २ व्यायाम भी प्राप्त हो जाता है :

२-दौड़ने, भागने, कूदने आदि से शरीर के समस्त अङ्गों की कसरत हो जाती है। शरीर में स्फूर्ति आती है। रक्त का संचार होता है। नये रक्त के द्वारा शरीर पुष्ट होता है।

३-फेंफड़ों को शक्ति प्राप्त होती है। रीढ़ की हड्डी पर जोर पड़ता है। शरीर में लचक बनी रहती हैं। मस्तिष्कके सभी विकार नष्ट होते हैं। शरीर में स्फुर्ति रहती है।

४-आमाशय और पाचक संस्थान के विकारों का नाश होता है। अङ्ग सुडौल होते हैं और वीर्य की रक्षा होती है।

५-दौड़ना-कूदना आदि

दौडना एक व्यायाम है। इस व्यायाम के द्वारा शरीर के विभिन्न अगों की पर्याप्त कसरत हो जाती है। दौडनेसे शरीर का रक्त पूरी तरह स्वच्छ हो जाता है। रक्त में सति आ जाने से वह दूषित तत्वों को निकाल फेंकता है।

खुली हवा में दौड़ना आवश्यक है। यह ध्यान रखना चाहिये कि दौड़ने का मैदान समतल तथा छोटी-छोटी घास से युक्त हो। ताकि पैर नरम स्थान पर पड़ें। कड़ी जगह पर पड़ने से तलुओं में कष्ट होता है। पीड़ा होती है।

स्वच्छ वायु फेंफड़ों में प्रविष्ट हो इसलिये दौड़ने के लिये प्रातः सूर्योदय से पहले का समय अधिक उपयुक्त रहता है। उस समय वृक्ष आदि आक्सीजन बहुतायत से छोड़ते रहते हैं। श्वांस नाक से लेनी चाहिये। दौड़ते समय मुँह को बन्द रखें।

नाक से गहरी श्वांस लें और जहां तक सम्भव हो अधिक देर तक श्वाँस को फेंफड़ों में रोकें।

कूदना एक कला और साथ साथ व्यायाम है। कूदने के कई तरीके हैं और उसे कितनी ही रीतियों से किया जाता है। ऊँचाई से कूदना, दूर तक कूदना आदि। परन्तु सभी प्रकार के कूदने में एक ही सा व्यायाम होता है। शरीर के सभी अंगों पर प्रभाव होता है और कसरत होती है।

कूदने के व्यायाम में रोढ़ की हड्डी पर विशेष तौर से प्रभाव पड़ता है। क्योंकि शरीर का समस्त भार मेरूदण्ड को ही सहन करना पड़ता है। कूदने से शरीर को एक तरह का झटका सा लगता है इस कारण मेरुदण्ड की लचक बनी रहती है।

इन दोनों कसरतों से शरीर में नवीन रक्त का संचार होता हैं और वीर्य की रक्षा होती है।

३-तैराकी, घुड़सवारी आदि

तैरने और घुड़सवारी की गणना श्रेष्ठतम व्यायामों में है। इनका प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है।

तैरना—जल के ऊपर तैरना एक व्यायाम है और एक कला भी है। जल का यह नियम है कि वह जल में गिरने वाली हर वस्तु को पहले अपने गर्भ में ले जाता है। साथ ही जब प्राणी अपने हाथ पैर चलाकर अपना शरीर साधने के योग्य होता है तो वह ऊपर तैर आता है।

जल में तैरने से शरीर के सभी अङ्गों पर अच्छा प्रभाव

होता है। श्वांस के वेग से श्वांस की नली शुद्ध होती हैं। रक्त के संचालन को गति मिलती हैं। फेंफड़े मजबूत होते हैं। हाथ पैरों को पानी पर चलाना होता है इस कारण उनमें नवीन शक्ति का संचार होता है। हाथ-पैरों में स्फूर्ति आती है। अङ्ग-प्रत्यंग सुडौल होता है।

घुड़सवारी—घुडसवारी के द्वारा भी शरीर के प्रत्येक अङ्ग का व्यायाम होता है। घोड़े की पीठ पर बैठने में दोनों जाँघों से घोड़े की पीठ को दबाये रखना होता है शरीर का तमाम भार निचले फड पर आता है। घोड़े के चलने से जो झटका लगता है उसे रीढ़ की हड्डी के सहारे रोका जाता है निदान उसमें लचक पैदा होती है। उसके समस्त विकार नष्ट होते हैं।

शरीर के अङ्ग सुडौल होते हैं। आमाशय एवं पाचक संस्थान के समस्त रोगों का नाश हो जाता है। फेंफड़ों को शक्ती प्राप्त होती है। वीर्य की रक्षा होती है।

७—आसन

शरीर को पुष्ट और वीर्य की रक्षा करने के लिये आसन सर्वश्रेष्ट माने जाते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रसार और प्रचार के कारण हम लोग आसनों के महत्व को भूल बैठे थे। परन्तु स्वास्थ्य के गिरते हुए स्तर ने पुनः लोगों को उनकी उपयोगिता के प्रति सजग कर दिया है।

आसन वास्तव में यौगिक क्रिया है। इनके द्वारा योग की साधना में विशेष लाभ प्राप्त होता है। परन्तु शरीर को आरो-

न्यता और स्वास्थ्य लाभ के दृष्टिकोण से भी इनसे उत्तम अन्य कोई साधन नहीं है। आसनों का मूल उद्देश्य है ब्रह्मचर्य की रक्षा और शरीर को शक्ति प्रदान करना।

आसन चार प्रकार के होते हैं:—

१—खड़े होकर किये जाने वाले
२—लेटकर किये जाने वाले
३—बैठकर किये जाने वाले
४—विपरीत अवस्था वाले

वैसे तो आसन स्वतः ही एक विस्तृत विषय है और इसकी जानकारी के लिये पृथक पुस्तक की आवश्यकता होगी परन्तु प्रसङ्ग वश हम यहाँ उन चुने हुये आसनों का वर्णन करेंगे जिनके द्वारा शरीर को आरोग्य रखा जा सके और ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सके। इस श्रेणी में आने वाले आसनों निम्नलिखित हैं—

१—शीर्षासन
२—मुक्त हस्त वृक्षासन
३—ताड़ासन
४—पादहस्तासन
५—मयूरासन
६—पद्मासन
७—गर्भासन
८—पश्चिमोत्तासन
९—मत्स्यासन
१०—सर्वांगासन

इन आसनों के द्वारा शरीर पुष्ट होता है। वीर्य की रक्षा

होती है। रोगों का नाश होता है और शरीर में स्फूर्ति प्राप्त होती है। ये चुने हुये वे आसन हैं जिन्हें स्त्री-पुरुष दोनों ही समान रूप से कर सकते हैं और अपने ब्रह्मचर्यको पालनमें समर्थ हो सकते हैं।

१–शीर्षासन
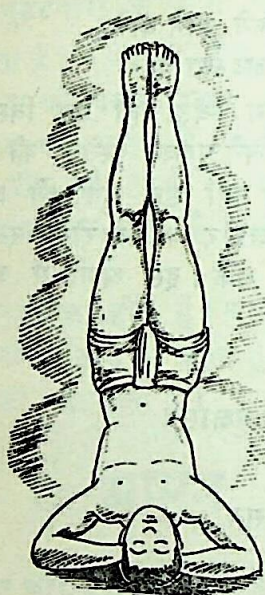
शीर्षासन

विधि १–समतल पृथ्वी पर किसी दीवाल के सहारे एक नरम कपड़ा रखें। बैठने के बाद उस कपड़े पर अपनी खोपड़ी को अच्छी तरह जमाकर रखें सहारे के लिये कपड़े के पास ही अपने हाथों को टिकालें।

२–जब खोपड़ी को अच्छी तरह टिका लिया जाये तो

हाथों पर शरीर का समस्त भार डाल दें और शरीर के समस्त भार को खोपड़ी के ऊपर साधने की चेष्टा करें। हाथों के सहारे खोपड़ी पर शरीर का भार डालते हुए पैरों की सहायता से धड़ को धीरे—धीरे ऊपर उठायें।

३—इस प्रकार शरीर विपरीत दशा में खड़ा हो जावेगा अर्थात् सिर नीचे रहेगा और पैर ऊपर होंगे। जब शरीर की यह स्थिति हो जाये तो शरीर को एक दम कड़ा रखें और नाक के द्वारा श्वाँस को ग्रहण करें और निकालते रहें। श्वाँसें गहरी लें और यदि सम्भव हो सके तो प्राणायाम करें।

४—हाथों को कोहनियों के बल खोपड़ी के पास लगाये रखें क्योंकि इस प्रकार शरीर के भार का कुछ अंश कोहनियों पर पड़ जाता है और इससे खोपड़ी को आराम मिलता है।

५—यदि प्रारम्भ में बिना किसी सहारे के शरीर को विपरीत अवस्था में खड़ा करने में कठिनाई अनुभव हो तो शरीर को साधने की इच्छा से प्रारम्भ में दीवाल के पास इस आसन को करें। परन्तु जब शरीर सधना प्रारम्भ हो जाये तो इस आसन को स्वतन्त्र वातावरण में करना चाहिये।

६—यदि शीर्षासन की पूर्ण क्रिया एक बारगी न की जा सके तो कोई परेशानी नहीं है। पैरों को पूरा मत खोलिये। पैरों को घुटनों के पास से मुड़ा रहने दें। जब पूर्ण अभ्यास हो जाये तो घुटनों को खोलकर पूर्ण क्रिया को करें।

७—यह ध्यान रखना चाहिये कि शीर्षासन करते समय किसी प्रकार की जल्दबाजी अथवा कोई उत्तेजना न हो। सिर के ऊपर जब शरीर के भार को डाला जाये तो वह क्रिया बहुत ही धीरे और क्रम से की जानी चाहिये। क्योंकि तनिक भी

उत्तजना अथवा घवराहट से शरीर को ऊपर ले जाते समय खोपड़ी के निचले भाग में झटका लग सकता है और उससे रीढ़ की हड्डी पर बुरा प्रभाव हो सकता है। क्योंकि गर्दन के सबसे पिछले भाग में रीढ़ की हड्डी का ऊपर का सिरा होता है जो खोपड़ी के साथ शेष शरीर को जोड़ता है।

८—जिस तरह धीरे-धीरे शीर्षासन की क्रिया को सावधानी के साथ प्रारम्भ करें उसी प्रकार सावधानी के साथ उस क्रिया को समाप्त भी करें। अन्यथा हो सकता है कि जल्दवाजी में आसन खोलते समय शरीर का अनिष्ट हो जाये।

९—शीर्षासन की क्रिया को बहुत ही सावधानी के साथ प्रारम्भ करें। पहले इस क्रिया को कम दिनों समय करें क्योंकि विपरीत अवस्था में शरीर को अधिक समय तक टिकाये रखने में प्रारम्भ में कष्ट होता है। जब शरीर इसका आदी हो जाये तो क्रम से अवधि बढ़ाते जायें।

शीर्षासन समस्त आसनों में श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि इसका प्रभाव समस्त शरीर पर तथा हर शिरा पर होता है। यह ब्रह्मचर्य पालन में सर्वाधिक सहायक होता है। इससे लाभ निम्न प्रकार से उल्लेख किये जाते हैं।

लाभ—१—सामान्यतः मानव शरीर का प्रवाह पैरों की ओर होता है। परन्तु इस आसन के द्वारा रक्त का प्रवाह विपरीत अवस्था में हो जाता है। इस कारण रक्त के अनेकों विकार स्वतः नष्ट हो जाते हैं। रक्त वाहिनी नलियां स्वच्छ हो जाती हैं और दूषित तत्वों को सहज ही निकाल कर फेंक दिया जाता है।

२—वीर्य का केन्द्रिय स्थान खोपड़ी का ऊपर वाला भाग

तालू माना गया है। वीर्य की पर्याप्त मात्रा इस स्थान पर एकत्रित रहती है और समय-समय पर वह बूदों के रूप में वीर्य टपकाती रहती है। यह वीर्य रक्त में मिलकर उसे स्वस्थ करता है। यह बूँद क्योंकि निरन्तर टपकती रहती हैं इस कारण भण्डार क्षय होता रहता है। इस आसन के द्वारा यह क्रिया बन्द हो जाती है वरन शरीर का वीर्य पुनः उस स्थान पर जाकर एकत्रित होने लगता है। वीर्य भण्डार की कमी नियमित रूप से पूर्ण होती रहती है।

३—मस्तिष्क शरीर के ऊपर होता है। अतः उसे निरन्तर कार्यरत रहना होता है। ऐसी दशा में इस आसन के द्वारा उतने समय तक मस्तिष्क को आराम मिल जाता है जब तक यह आसन किया जाता है।

४—मस्तिष्क की शिराओं में नवीन रक्त जब तेजी के साथ दौड़ता है तो वह पुष्ट होता है। उसमें एक नवीन शक्ति का संचार होता है।

५—वीर्य शरीर की शक्ति है। वही ओज, स्फुर्ति और चेतना या जागृति का स्तोत्र है। वह सामान्य अवस्था में रक्त के साथ मिलकर निरन्तर नीचे की ओर दौड़ा करता है। उसकी स्थिति पारे के समान है और वह ढाल की ओर भागते रहने के कारण बाहर जाने की चेष्टा भी करता है। उसकी चेष्टा से कामोत्तेजना भी बढ़ जाती है। परन्तु इस आसन के द्वारा उसकी इस गति का अवरोध होता है और वह मस्तिष्क की ओर भागने लगता है। कामोत्तेजना का स्वतः ही नाश हो जाता है और वीर्य की रक्षा होती है।

६—मानव का शरीर एक प्रकार कल्पावस्था को प्राप्त करता है। हम सभी जानते हैं कि माता के गर्भ में बालक सिर नीचा किये ही रहता है और उसी अवस्था में रहने के कारण उसके अङ्ग विकसित एवं पुष्ट होते हैं। इस आसन के द्वारा भी वही फल प्राप्त होता है।

७—शीर्षासन करते समय प्राणायाम करने की जो व्यवस्था है उसके द्वारा शरीर के साथ ही हृदय को भी बल प्राप्त होता है रक्त की शुद्धि के कारण हृदय पर दवाब कम हो जाता है और शुद्ध रक्त समस्त अङ्गों में प्रवाहित होता है।

८—मेरुदण्ड के अन्दर पोल होती है। यही कारण है कि इस पोल के द्वारा मस्तिष्क का गुदा से सम्बन्ध होता है। मस्तिष्क के सुषुम्ना का प्रवाह नीचे की ओर होता रहता है परन्तु इस आसान के द्वारा विपरीत अवस्था आ जातीहै जिसका प्रवाह बुद्धि पर होता है।

९—मस्तिष्क में बल आता है। दिमागी शक्ति बढ़ती है। सिर के दूषित रक्त का विनाश होता है। सिर के श्वेत बाल धीरे—धीरे काले होने लगते हैं।

१०—नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। नेत्रों के विचार नष्ट हो जाते हैं। आज्ञा चक्र आदि को बल मिलता है।

शीर्षासन श्रेष्ट आसन है। इसे स्त्री पुरुष समान रूप से करके वीर्य की रक्षा कर सकते हैं।

२–मुक्त हस्त वृक्षासन

यह आसन शीर्षासन का ही एक स्वरूप माना गया है परन्तु यह शीर्षासन से अधिक क्लिष्ट एवं जटिल है।

विधि—१—शीर्षासन की तरह पहले नरम कपड़े की गद्दी पर सिर को टिका लीजिये और अपने पैरों के सहारे शरीर को खोपड़ी के बल खड़ा करने की चेष्टा करें।

२—जब शरीर शीर्षासन की अवस्था में आ जाये तो धीरे—धीरे हाथों की हथेलियों को सिर के पास पृथ्वी पर जमा लीजिये और हाथों के बल शरीर को टिकाने की चेष्टा करें।

३—समस्त शरीर को कड़ा रक्खें और हथेलियोंके आधार पर शरीर को टिका रहने दें। श्वांस यदि ले तो गहरी और क्रम से लें वरन प्राणायाम करना अच्छा होता है।

४—जब हाथ शरीर के भार को सहन न कर सकें तो आसन को धीरे—धीरे खोलना आरम्भ करें। खोपड़ी को पुनः पृथ्वी पर लगा दें और हाथों को उनके स्थान पर सिकोड़ कर ले आयें। शरीर को धीरे—धीरे पृथ्वी पर लाने की चेष्टा करें।

५—इस आसन को आरम्भ में अधिक देर तक न करें धीरे—धीरे समय की अवधि को बढ़ाते जायें। यदि प्रारम्भ में सहारे के बिना आसन न किया जा सके तो दीवार अथवा अन्य किसी वस्तु का सहारा लिया जा सकता है।

इस आसन से होने वाले लाभ शीर्षासन के ही समान होते हैं। उनमें प्रमुख निम्न हैं—

लाभ—१—रक्त का संचालन विपरीतावस्थामें होता है। सिर समस्त शक्ति केन्द्रित होती है। बुद्धि तेज होती है। और आँखों की ज्योति बढ़ती है।

२-भुजाओं में बल आता है। हृदय के रक्त फेंकने वाली शिराओं का सुधार आता है। उनके [illegible] नष्ट हो जाते हैं

और हृदय शक्तिशाली होता है। श्वाँस सम्बन्धी रोग एवं दिल की धड़कनों के रोग नष्ट होते हैं।

३—आमाशय के विकार नष्ट होते हैं। पाचन संस्थान को क्रियाऐं उचित दिशा में कार्य करने लगती हैं। कहा जाता है कि इस आसन को नियमित रूप से करने से जलन्धर एवं पथरी रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

४—यह आसन योगी, ब्रह्मचारियों तथा मानसिक कार्य करने वालों के लिये देवतुल्य होता है। इसके द्वारा वीर्य की रक्षा होती है और मस्तिष्क को शक्ति प्राप्त होती है।

३–ताड़ासन
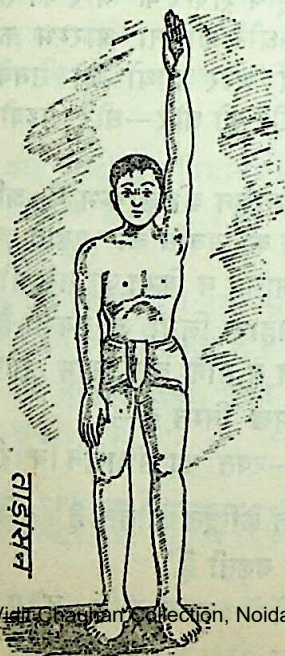
खड़े होकर किये जाने वाले आसनों में ताड़ासन सबसे सुगम तथा श्रेष्ठ है। इसे आसानी से किया जा सकता है और इसका प्रभाव समस्त शरीर पर प्रभावशाली होता है।

विधि–१—समतल पृथ्वी पर किसी दीवारके सहारे पहले इस तरह खड़े होने का अभ्यास डालें कि सिर और पीठ का भाग एक ही सीध में रहे।

२—पाँवों को बिलकुल मिलाकर रखें और शरीर को पूरी तरह कड़ा बनाये रहें। शरीर का कोई अङ्ग भी शिथिल न रहने पाये यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।

३—श्वाँस नाक के द्वारा गहरी और धीमी लें। पैरों की एड़ी, चूतड़, पीठ और सिर का भाग पृथ्वी से सटा रहना चाहिये। इस प्रकार खड़े होने से शरीर के हर भाग पर पूरा जोर पड़ता है।

५–हाथों को धीरे—धीरे आगे बढ़ायें और उनको उसी दशा में पुनः ऊपर उठायें। पहले यह क्रिया एक हाथ से प्रारम्भ करें। जब हाथ कंधे के ऊपर समानान्तर आ जाये तो उसे ऊपर की ओर ले जाकर सीधा करके ताने रखें।

५—यद्यपि ऊपर कोई वस्तु छूने को नहीं होती परन्तु अपने मनमें यही भाव बनाये रखें कि आपको हाथ के द्वारा किसी वस्तु को छूना है। इस भावना को धारण करके जब यह आसन किया जाता है तो उससे शरीर पर अच्छा प्रभाव होता है। लम्बाई बढ़ती है।

६—इसी प्रकार इस क्रिया को दूसरे हाथ से भी करें। जब दोनों हाथ क्रिया को साधने योग्य हो जायें तो दोनों

से एक साथ यह क्रिया की जा सकती है। दोनों हाथों से जब क्रिया की जाती है तो आसन सिद्ध हो जाता है। जिस प्रकार धीरे—धीरे हाथों को ऊपर ले जाया जाये उसी प्रकार उनको नीचे भी उतारना चाहिये।

लाभ—१—इस आसन के द्वारा शरीर के सभी अंगों पर अच्छा प्रभाव होता है। नसें खुल जाती हैं। उनमें रक्त का संचार तीव्रगति से होता है। शरीर पुष्ट और बिकसित होता है।

२—इस आसन की विशेषता यही है कि इसका प्रयोग सरलता से किया जाता है। दुर्बल से दुर्बल आदमी भी उसे सहज ही कर सकता है। इसका प्रभाव शरीर पर अच्छा होता है।

३—आमाशय और पाचक संस्थान की नसें खिचती हैं। और इस खिचाव के कारण उनके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर के अशुद्ध तत्व दूर होते हैं और शक्ति प्राप्त होती है।

४—हाथों, पसलियों, फेंफड़ों, जाँघों पर विशेष प्रभाव होता है। इनमें शक्ति का संचार होता है और ये अंग पुष्ट होते हैं।

५—रक्त विकारों के नष्ट होने से वीर्य पुष्ट होता है और उसका केन्द्रीय कारण मस्तिष्क में होता है। वीर्य की रक्षा द्वारा शरीर में नवीन स्फूर्ति और कान्ति आती है। चेतना प्राप्त होती है।

४—पादहस्तासन

विधि—१—समतल पृथ्वी पर पहले शरीर को अच्छी

तरह कड़ा करके खड़े हो जायें। दोनों पैरों को मिलाकर ही खड़ा होना चाहिये।
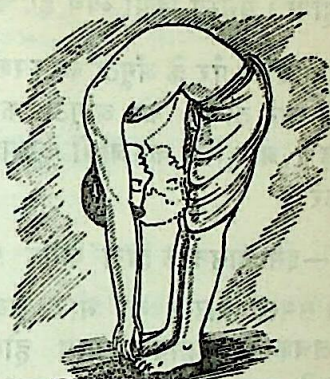
पादहस्तासन

२—पहले हाथों को धीरे-धीरे सीधा करके कन्धों से ऊपर सिर के पास ले जायें। तब धीरे—धीरे हाथों को इस प्रकार से झुकाते जायें कि उनके साथ सिर, कन्धे तथा कमर से ऊपर वाला भाग स्वतः झुकता चला आये।

३—हाथों को इस चेष्टा से झुकाना चाहिये कि वे पृथ्वी पर रखे पैरों के अंगूठों को पकड़ सकें। इस तरह की चेष्टा करने में आप देखेंगे कि आपकी कमर का पिछला भाग थोड़ा सा ऊपर आ जायेगा और सिर कमर के समानान्तर आ लगेगा। हो सकता है कि काफी समय तक आप पैरों के अंगूठों का स्पर्श न कर सकें। परन्तु चेष्टा करते रहना चाहिये। कमर प्रारम्भ में अधिक देर तक झुकने को सहन नहीं कर पाती है परन्तु धीरे-धीरे अभ्यास होने पर वह झुकने लगती है।

४—पैरों के घुटनों को बिलकुल सीधा रखें। कमर को

झकाते समय घुटनों को न मुड़ने दें। यदि परों के घुटने मुड़ गये और पैर के अंगूठों का स्पर्श हो गया तो भी आसन का कोई महत्व न होगा। समस्त क्रिया व्यर्थ ही चली जायेगी।

५—जब हाथों से पैर के अँगूठों का स्पर्श करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाये तो पैर को अँगूठों का स्पर्श करने के बाद उनको छोड़ दें और सिर को जाँघों के पास घुटनों के पास लाने को चेष्टा करें।

लाभ—१—इस आसन के द्वारा कमर पर सबसे अधिक प्रभाव होता है। समस्त शरोर का भार जब कमर पर आता है तो कमर की लचक में सहायता प्राप्त होती है। आम तौर पर रीढ़ की हड्डी कार्य सीधा तना रहना होता है। चलते फिरने और लेटने, बैठने में रीढ़ की हड्डी सीधी रहती है। इस पर ही शरीर का समस्त भार पड़ा रहता है। इस आसन के द्वारा उसकी क्रिया शक्ति में विकास होता है और लचक आने लगती है।

२—आमाशय की थैली अपनी कोमलता तथा अधिक बठने के कारण आगे की ओर बढ़ने लगती है। परिणाम स्व-रूप पेट आगे को ओर फूल आता है। इस आसन के द्वारा आमाशय पर प्रभाव पड़ता है। उसमें संकोचन होना प्रारम्भ होता है और वह धीरे—धीरे सिकुड़ने लगतो है।

३—इस आसन के द्वारा फेंफड़ों पर यथेष्ट दबाव पड़ता है। और दीर्घ श्वांस की क्रिया से उनकी सफाई होती है।

४—मेरुदण्ड में लचक आने से वीर्य की रक्षा होती है। शरीर पुष्ट एव सुडौल बनता है।

५—मयूरासन
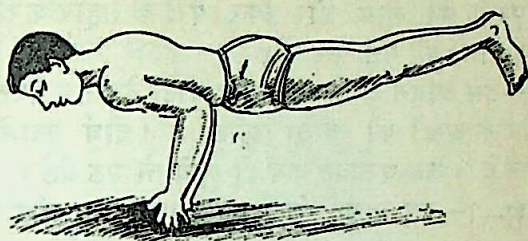
मयूरासन

विधि—१—शरीर को कड़ा करके समतल पृथ्वी पर खड़े हो जायें। श्वांसोच्छवास दीर्घ तथा नासिका द्वारा करते रहें।

२—जब शरीर में थोड़ी चेतना प्राप्त हो जाये तो पृथ्वी पर लेट जायें। शरीर को पट्ट अर्थात् उलटे होकर लेटें। ध्यान रहे कि शरीर का हर भाग कड़ा रहे।

३—हाथों को कमर के पास पृथ्वी पर जमाकर रखें। दोनों हथेलियों पर वजन डालें और उन हथेलियों के सहारे शरीर को धीरे-धीरे ऊपर उठाने को चेष्टा करें। इस प्रकार शरीर को अधर उठाते समय हाथों का सहारा लें और यह ध्यान रखें कि शरीर कड़ा बना रहे।

४—गर्दन को आगे की तरफ झुका लें। इस क्रिया से हाथों का भार कम हो जायेगा और शरीर का पिछला भाग सीने के आधार पर सहज ही ऊपर उठ सकेगा। जब सम्पूर्ण शरीर हाथों के सहारे अधर में तुल जाये तो थोड़ा देर तक प्राणायाम करें अथवा नाक से दीर्घ श्वाँसें लें।

५—जब शरीर को साधना भारी महसूस होने लगे तो धीरे—धीरे शरीर को पुनः पृथ्वी पर लाने की चेष्टा करें। पैरों को पहले पृथ्वी पर लायें और फिर पैरों के सहारे शरीर को खड़ा करके हाथों को मुक्त कर लें।

६—इस आसन को करनेके बाद थोड़ी देर तक चित्त लेटे रहें। शरीर के अङ्गों को ढीला छोड़ दें। दीर्घ श्वांसें लेना प्रारम्भ कर दें। जब थकावट कम हो जाये तो उठ बैठें।

लाभ—१—इस आसन के द्वारा हाथ, सीना और कन्धों पर विशेष जोर होता है। यह समस्त अङ्ग सुडौल बनते हैं और उनमें शक्ति प्राप्त होती है।

२—शरीर का अगला भाग नीचा और पैरों का भाग ऊँचा रहने के कारण रक्त संचालन की क्रिया में प्रभाव पड़ता है। पैरों की ओर से रक्त मस्तिष्क की ओर भागने लगता है। रक्त स्वच्छ होता है उसके रोगों का नाश होता है।

३—आमाशय और पाचन संस्थान पर पर्याप्त दबाव पड़ने के कारण उनके विकार नष्ट होते हैं।

४—वीर्य की रक्षा होती है। मस्तिष्क को शक्ति बढ़ती है। यह आसन स्त्रियों के लिये वर्जित है।

६-पद्मासन

समस्त आसनों में श्रेष्ठ पद्मासन है। इसकी क्रिया सरल है तथा इसका प्रयोग सदैव बैठते समय किया जा सकता है। कहा जाता है कि सदैव पद्मासन से बैठने वाला प्राणी मृत्यु को भी जीत लेता है। योगीजन इसे मृत्युंजय आसन के नाम से भी पुकारते हैं।

विधि—१—समतल पृथ्वी पर जो चारों ओर से खुली हो और जहाँ स्वच्छ वायु का निरन्तर आवागमन हो नरम आसन बिछाकर बैठना चाहिये ।
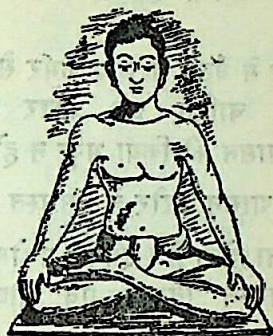
पद्मासन

२—शरीर को सीधा रखें । बायें पैर के पंजे को दाँयी जाँघ पर जमा दें और दांयें पैर के पंजे को बाँयी जांघ पर जमा दें । साथ ही यह ध्यान रखें कि पैरों के तलुये ऊपर की ओर खुले रहें और दोनों पैरों की एड़ियाँ अण्डकोषों के पास स्थित रहें।

३—कमर से ऊपर का भाग सीधा तना हुआ रहे । गुदा से लेकर घुटनों तक का भाग पृथ्वी से चिपटा रहे । दोनों हाथों की हथेलियाँ दोनों घुटनों पर खुली हुयी रखी रहें ।

४—पद्मासन से बैठ कर प्राणायाम की साधना करनी चाहिये · इस आसन का सबसे ज्यादा प्रभाव मेरुदण्ड पर पड़ता है । शरीर के समस्त अङ्ग सुचारु रूप से प्रभावित होते हैं ।

५—यदि प्रथम प्रयास में दोनों पैरों को आबध्य करना कठिन हो तो प्रारम्भ में एक पैर को सही स्थिति में रखें और क्रम से दूसरे पैर को रखें। जब दोनों पैरों को सही स्थिति में रहने का अभ्यास हो जाये तो इस आसन को मूल रूप से लगाया जा सकता है।

६—पद्मासन से बैठने के बाद कमर से ऊपर के भाग को दोनों ओर घुमाना चाहिए। इस प्रकार धड़ को घमाते हुए रखना चाहिये कि आसन की क्रिया भङ्ग न हो।

लाभ—१—पद्मासन शरीर के समस्त विकारों को पूर्ण तया नष्ट करने वाला होता है। इसके प्रयोग से आमाशय और पाचक संस्थान के समस्त विकार एवं दोष मूलतः नष्ट हो जाते हैं।

२—पैरों के तन्तुओं पर खिचाव पड़ने से पैरों का रक्त शुद्ध होता है। कमर से नीचे के शरीर में होने वाले समस्त विकार स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

३—पद्मासन के साथ प्राणायाम करने से शरीर के समस्त अङ्ग तथा प्रत्यङ्गों की वृद्धि होतो है। बुद्धि प्रखर होती है और मानसिक शक्ति प्रबल होती है। चित्त में स्थिरता आती है।

४—इस आसन के द्वारा वीर्य की रक्षा होतो है। स्त्रियों पुरुषों दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

७-गर्भासन

गर्भासन प्राकृतिक आसन है। बालक जब माता के गर्भ में रहता है तो उसके शरीर को एक स्थिति होती है। यह आसन

बैठकर किया जाता है और इसके करने से शरीर का एक प्रकार से कल्प हो जाता है।

गर्भासन

विधि—१—समतल पृथ्वी पर नर्म आसन विछाकर पहले पद्मासन की स्थिति में बैठ जायें। दोनों हाथों को तब जांघों और घुटनों के बीच से होकर इस तरह निकालें कि पैरों की पिंड़लियां कोहनी के पास तक आ जायें। और कोहनी के ऊपर वाला हाथों का भाग स्वतंत्र हो सके।

२—इस प्रकार शरीर का समस्त भार चूतड़ों के ऊपर आ जायेगा। पैरों के पंजे पेट से अथवा कमर के निचले भाग से चिपट जायेंगे। तब शरीर का वजन पीछे की ओर गिरता हुआ महसूस हो तो दोनों हाथों से दोनों कानों को पकड़ लेना चाहिए। इस प्रकार शरीर की तौल हो जायेगी और शरीर का वजन पूरी तरह टिका हुआ रहेगा।

३—समस्त शरीर को पूरी तरह कड़ा रखें। इस आसन के साधने में शरीर को थोड़ा सा कष्ट अवश्य होता है परन्तु उस

कष्ट की चिन्ता न करके आसन को सही स्थिति में साधे रहें। पीठ की रीढ़ की हड्डी को पूरी तरह सीधी और तनी रखें।

४—यदि कानों को पकड़ने में किसी प्रकार कष्ट अनुभव हो और हाथों को ऊपर गर्दन तक बढ़ाने की क्षमता हो तो हाथों को गर्दन के पास तक ले जायें और दोनों हाथों की उंगलियों को गर्दन के पीछे ले जाकर जंजीर की तरह उन्हें एक दूसरे से जकड़ कर रख लें।

लाभ--१—इस आसन के द्वारा समस्त शरीर के अंगों का एक प्रकार से कल्प हो जाता है। हर अङ्ग को प्राकृतिक दशा सही हो जाती है और उसके शरीर में जो भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं वे स्वतः दूर होने लगते हैं।

२—इस आसन के द्वारा आमाशय पर विशेष प्रभाव होता है। आमाशय ही मानव शरीर का आधार है। इसमें सुधार होने से शरीर के समस्त विकार नष्ट होते हैं। आतों को बल मिलता है और पाचन क्रिया में सुधार होता है। जठराग्नि प्रबल होती है और आतों को भोजन पचाने की शक्ति में वृद्धि होती है।

३—हाथों और पैरों की नसों पर प्रभाव होता, उसमें पूर्ण खिचाव होने के कारण रक्त का वेग बढ़ता है। रक्त शुद्ध होता है और इड़ अङ्गों की पुष्टि एवं विकास होता है।

४—शरीर जब प्राकृतिक अवस्था में रहने का आदी हो जाता है तो उसके समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। हृदय, मस्तिष्क, चक्र आदि सभी की दशा में सुधार होता है और सभी पूर्णतया स्वस्थ और शक्तिशाली होती हैं।

५—मेरुदण्ड में लचक पैदा हो जाने से मस्तिष्क के

विकार स्वतः नष्ट होते हैं और सिर दर्द, स्नायुदौर्बल्य आदि नाश होते हैं।

६—बात, कब्ज, सिर दर्द, मानसिक शिथिलता, मृगी आदि रोग इस आसन के प्रयोग से सर्वथा नष्ट होते हैं।

इस आसन को स्त्री एवं पुरुष समान रूप से कर सकते हैं इस आसन को सिद्ध करने में थोड़ा समय अधिक लगता है।

८—पश्चिमोत्तासन
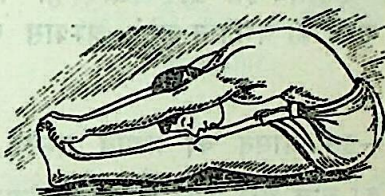
पश्चिमोत्तासन

विधि—१—समतल पृथ्वी पर आसन बिछाकर बैठ जायें। दोनों पैरों को पूरी तरह फैला लीजिए। पांवों को इस तरह सीध में फैलायें कि वे सीधे एवं कड़े रहें। वे दोनों आपस में पूरी तरह एक दूसरे से सटे रहें, कमर सीधी और कड़ी रखें।

२—प्रारम्भ में हाथों को कमर के ऊपर जमाये रखें और तब उनको धीरे-धीरे पहले आगे की ओर बाद में कन्धों के ऊपर की ओर ऊँचा उठायें। जब हाथ पूरी तरह सीधे हो जायें तो कमर को इस प्रकार आगे पैरों की ओर झुकायें कि हाथ और सिर एक सी अवस्था में आगे बढ़ें और इस तरह हाथों

की उंगलियां पैरों के अंगूठों को स्पर्श करने लगे और सिर जाँघों पर आकर टिक जाये।

३—इस आसन को करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि शरीर को आगे की ओर झुकाते हुए पैर चूतड़ और जाँघों को पृथ्वी से सटाये हुये रखें। शरीर के किसी भी अङ्ग को किसी भी दशा में ढीला न होने दें।

४—कमर को झुकाने में थोड़ा सा कष्ट अवश्य होता है और कमर को एक ही दिन में इस तरह झुकाना सम्भव भी नहीं है कि वह सिर को जाँघों पर घुटनों के पास ला सकने में समर्थ हो सके। इसलिये इसे धीरे—धीरे ही करना चाहिये और शीघ्र सिद्ध करने की चेष्टा न करें। अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाते जायँ।

लाभ—१—इस आसन का प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है। नीचे का अङ्ग और ऊपर का जङ्ग कमर को मोड़ने से एक दूसरे से मिला दिये जाते हैं। हाथ-पैर कमर, रीढ़ की हड्डी आदि की नसों पर पूरा खिंचाव पड़ता है। रक्त की चाल में तेजी आ जाती है। और रक्त विकार से उत्पन्न हुये समस्त दोष स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

२—आमाशय और पाचक संस्थान के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। फेंफड़ों, आँतों आदि को पर्याप्त बल प्राप्त होता है। दिल को शक्ति मिलती है। हृदय रोग नष्ट होते हैं।

३—मानसिक शक्ति का विकास होता है। बुद्धि तीव्र होती है। मानसिक रोग नष्ट होते हैं।

४—वीर्य की रक्षा होती है। शरीर को स्थूलता नष्ट

होती है। श्वांस, दमा आदि रोगों में लाभ होता है। प्रमेह, प्रदर आदि रोगों को नष्ट करता है।

६—मत्स्यासन
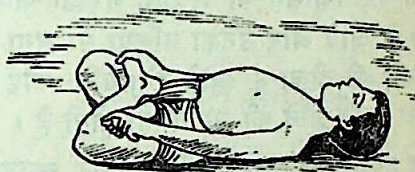
मत्स्यासन

लेट कर किये जाने वाले आसन में मत्स्यासन श्रेष्ठ है। इस आसन के द्वारा शरीर को मछली की सी आकृति में लाना होता है इसी कारण इसका नाम मत्स्यासन रखा गया है। हम सभी जानते हैं कि मछली जल का जीव है और वह निरन्तर तैरती रहती है। इतने परिश्रम करने की क्षमता का रहस्य उसकी आकृति और उसके शरीर के गठन पर है। इसी व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये पुरातन शिक्षा शास्त्रियों ने इस आसन का निरूपण किया है।

विधि—१—समतल पृथ्वी पर आसन अथवा चटाई बिछा कर शरीर को पूर्ण स्वच्छन्द करके लेट जायें।

२—दोनों पैरों को एक दूसरे से सटा कर रखें दोनों

हाथों को कमर के पास चिपकाये रखें। शरीर को कड़ा बनायें और श्वाँसोच्छ्वास दीर्घ एवं सम रखें।

३—लेटे ही लेटे पैरों को पद्मासन की स्थिति में ले आयें यदि हाथों के उपयोग की भी आवश्यकता हो तो हाथों की सहायता ले सकते हैं।

४—जब पैर पद्मासन की स्थिति में आ जायें तो हाथों को सिरके नीचे ले जायें और उनका तकिया सा लगा लें। शरीर के किसी भाग को भी ढीला न होने दें। यदि कोई भी अङ्ग ढीला होगया तो हानि होने की सम्भावना होती है।

५—यह ध्यान रखें कि जाँघें, कमर, चूतड़, पीठ का भाग पृथ्वी से चिपटा रहे। यदि प्राणायाम साध सकें तो उत्तम है यदि प्राणायाम न साधा जा सके तो श्वाँसोच्छ्वास सम और दीर्घ करें।

लाभ—१—मत्स्यासन के द्वारा शरीर को बल मिलता है। रीढ़ की हड्डी के समस्त विकार दूर हो जाते हैं। उसकी लचक कायम रहती है। कमर पर जोर पड़ने से आमाशय और पाचक संस्थान के रोग दूर हो जाते हैं।

२—वीर्य सम्बन्धी समस्त रोगों का नाश होता है। इसके प्रयोग से मस्तिष्क की शक्ति में वृद्धि होती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है और समस्त मानसिक रोगों एव विकारों का नाश होता है।

३—इस आसन के प्रयोग से फेंफड़ों को शक्ति प्राप्त होती है। प्राणायाम अथवा श्वाँसोच्छ्वास की दीर्घ क्रिया द्वारा शरीर का रक्त शुद्ध होता है।

४—गुदा रोग, मेंदे के रोग, अतिसार आदि इसके प्रयोग

से स्वतः नष्ट होते हैं। जाँघों को बल मिलता है। शारीरिक परिश्रम की थकावट दूर हो जाती है। जिन लोगों को अधिक देर तक बैठने का काम करना होता है उनके लिये यह बहुत लाभ दायक होता है।

इस आसन को बहुत से तैराक पानी के ऊपर तैरते समय करते हैं। यह आसन निर्दोष है और इसे स्त्री तथा पुरुष समान रूप से प्रयोग कर सकते हैं।

१०—सर्वाङ्गासन
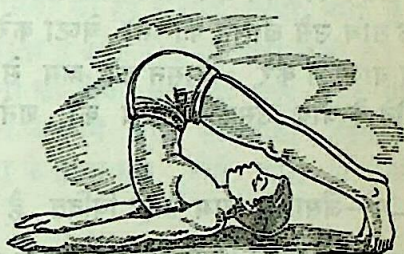
सर्वांगासन

यह आसन लेटकर किये जाने वाले आसनों में श्रेष्ठ है।

विधि—१—समतल पृथ्वी पर आसन अथवा चटाई को बिछाकर लेट जायें।

२—शरीर को पूरी तरह सीधा और कड़ा बनाये रखें। दोनों पैरों को एक दूसरे से सटा कर रखें। हाथों को बगलों से चिपटाये हुये रखें।

३—धीरे-धीरे पैरों को ऊपर की ओर उठायें। जब पैर सीधे हो जायें तो उनको सिर के ऊपर ले जाने की चेष्टा करें।

ऊपर के धड़ को सीने के ऊपर वाले स्थान से मोड़ लें। केवल सिर और कन्धों को ही पृथ्वी पर टिका हुआ रहने दें। शरीर की स्थिति को सम बनाये रखने की इच्छा से हाथों को अपने पूर्व स्थान पर ही रहने दें।

४—एक बात का पूरा ध्यान रखें कि शरीर का कोई भी भाग ढोला न होने पाये। जब शरीर विपरीत अवस्था में जाकर सिर के पार पैरों को पृथ्वी पर टिकाये रखने में पूरी तरह समर्थ हो जाये तो स्वांस क्रिया को रोककर प्राणायाम साधने की चेष्टा करें।

५—आसन को जिस धैर्य और संयम के साथ बांधें उसी प्रकार धैर्य के साथ उसे खोलने की भी चेष्टा करें। प्रारम्भ में हरगिज जल्द बाजी न करें। आसन को क्रम से बढ़ाते जायें और सिद्ध होने के बाद उसकी अवधि को शनैः शनः बढ़ाते जायें।

लाभ—१—जैसा कि नाम से ही विदित है इस आसन का प्रभाव शरीर के समस्त अङ्गों पर पूर्ण रूप से पड़ता है।

२—यह आसन लेट कर किया जाता है साथ ही इसके करने की क्रिया विपरीतावस्था में होने के कारण भी विशेष प्रभावशाली होती है। जिस प्रकार शीर्षासन के द्वारा शरीर के रक्त संचालन की क्रिया का प्रभाव ऊपर से नीचे की ओर होता है उसी तरह इस आसन में भी रक्त नीचे से ऊपर की ओर अर्थात उल्टी दशा में बहता है।

३—रीढ़ की हड्डी का झुकाव स्वाभाविक अवस्थामें आगे को ओर होता है। आमाशय की नसों पर खिचाव होता है। आमाशय एव पाचक संस्थान के समस्त रोग नष्ट होते हैं।

४—इस आसन के द्वारा वीर्य की रक्षा होती है। वीर्य का वेग मस्तिष्क की ओर होता है। मस्तिष्क को बल प्राप्त होता है। बुद्धि प्रखर होती है।

५—शरीर के समस्त जोड़ों के विकार स्वतः नष्ट हो जाते हैं। बात, बादी आदी के द्वारा जोड़ों में उत्पन्न हुये विकारों का नाश होता है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

यह आसन विपरीत अवस्था में होने के कारण यद्यपि कुछ कड़ा है परन्तु इसे स्त्री पुरुष दोनों ही समान रूप से कर सकते हैं।

वैसे तो आसन अनेकों प्रकार के और भी हैं परन्तु यहां केवल उन आसनों का ही उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा शरीर पुष्ट होता है और वीर्य की रक्षा होती है।

आसनों का विषय बहुत ही गहन और गम्भीर है। इन को सिद्ध करने के लिये पूरी सावधानी बरतनी चाहिये और उनकी साधना के द्वारा बल, वीर्य और आयु की वृद्धि करनी चाहिये।

शरीर की मालिश—मनुष्य का शरीर जिन तत्वों से निर्मित हैं वे पंच तत्व कहलाते हैं। ते पांचों तत्व पर्याप्त मात्रा प्रकृति से प्राप्त होते रहते हैं। ये पांचों तत्व हैं:—

१—पृथ्वी
२—जल
३—वायु
४—अग्नि
५—आकाश

हम सभी जानते हैं कि इस सृष्टि का निर्माण ही इन

पांचों तत्वों से हुआ है। अतः यह पाँचों तत्व किसी न किसी रूप में सदैव विचरण करते रहते हैं।

हर प्राणी का शरीर क्षय होने वाला है। प्रतिक्षण शक्ति का ह्रास होता रहता है। यदि समय—समय पर शरीर को नवीन चेतना एवं शक्ति प्राप्त न होती रहे तो वह एक ही दम बालू की दीवार की भाँति गिर भी सकता है। शरीर का प्रकृति से सम्बन्ध बनाये रखने के लिये शरीर में आवश्यक उप-करणों को बनाये रखा गया है।

हम सभी जानते हैं कि शरीर के ऊपर रोऐं अर्थात् खाल के ऊपर वे छोटे—छोटे से छिद्र जिनमें बाल होते हैं हमारे स्वास्थ्य के लिये अत्याधिक लाभ दायक हैं। ये हमारे शरीर की वे खिड़कियाँ हैं जिनके द्वारा यह पंचतत्व हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर क्षय हुयी शक्ति को नवीन चेतना और बल एवं ओज प्रदान करते हैं।

इन छिद्रों का कार्य है शरीर के अन्दर की गन्दगी को बाहर निकाल कर फेंकना तथा प्रकृति से प्राप्त की हुयी शक्ति को अन्दर पहुँचाना। यह छिद्र इतने छोटे होते हैं कि उनको सहज ही बन्द किया जा सकता है।

प्रकृति में पृथ्वी की बहुतायत है। मनुष्य क्योंकि स्थल का प्राणी है इसलिये इसे पृथ्वी पर रहना होता है। पृथ्वी के अणु वायु में सर्वत्र विचरते रहते हैं। जब वे मानव शरीर के संसर्ग में आते हैं तो आधार पाकर वे वहाँ अपना अधिपत्य जमा लेते हैं।

जब वे मनुष्य के शरीर पर बैठ जाते हैं तो जल, स्वेद आदि के संसर्ग से वे जम जाते हैं। जब उनकी अधिकता हो

जाती है तो वे खाल के ऊपर अपनी एक और पर्त जमा लेते हैं। इसे हम मैल कहते हैं। यह वही मैल है जिसे शरीर को रगड़ने पर देखा जाता है और अलग किया जाता है।

मैल शरीर के लिये बहुत ही हानिकारक है। यह छिद्रों को बन्द कर देता है। यदि इसकी समय-समय पर सफाई नहीं की जाती है तो इसके कारण शरीर में कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

मैल को हटाने के अलावा भी शरीर पर मालिश करने के कई और कारण हैं जिनमें से प्रमुख हैं :—

१—त्वचा रक्षा—खाल की रक्षा करना परम आवश्यक है। यह एक कोमल प्रकृति वस्तु है। वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी आदि के प्रभाव से इसकी कोमलता नष्ट होती रहती है। इसमें रूखापन, स्थान-स्थान पर चटखनें अथवा फटने का दोष होने लगता है। इन सभी दोषों को दूर करने के लिये मालिश सफल साधन है।

२—चिकनाई—हम जानते हैं कि हमारी खाल के नीचे चर्बी, मांस, हड्डी आदि रहती हैं। खाल को नीचे की ओर चिकनाई देने का कार्य अन्दर की चर्बी का है। परन्तु अन्दर की चिकनाई से ऊपर का काम नहीं चल पाता है। निदान मालिश के द्वारा शरीर को आवश्यक मात्रा में चिकनाई पहुँचायी जाती है।

३--अनावश्यक बात--शरीर पर रोयें होना स्वाभाविक है। इनकी जड़ छिद्रों में होती हैं और इनका ऊपरी भाग शरीर के ऊपर रहता है। शरीर को सुन्दर बनाये रखने के लिये अनावश्यक लम्बे बालों को नष्ट करते रहना ही जरूरी

है। इन रोयों को और किसी साधन द्वारा तो नष्ट नहीं किया जा सकता है। यदि किसी कारण से शरीर का कोई बाल तोड़ डाला जाता है तो वहाँ बालतोड़ नामक घाव हो जाता है। परन्तु मालिश एक ऐसा वैज्ञानिक उपक्रम है जिसके द्वारा शरीर पर उगने वाले रोयों में से असाधारण रूप से लम्बे एवं पके हुए बाल स्वतः ही बिना किसी प्रकार की परेशानी के नष्ट हो जाया करते हैं। इस प्रकार अधिकतर पके हुए बाल ही नष्ट होते हैं और इनके नष्ट होने से बालतोड़ आदि घाव नहीं होते हैं।

४—नसों पर खिचाव—व्यायाम करने से नसों के अन्दर दौड़ने वाला रक्त प्रभावित होता है। नसों पर जब खिचाव होता है उनमें एक तरह की बेचैनी सी आ जाती है। इस बेचैनी को दूर करने का एक ही रास्ता है वह है मालिश। मालिश के द्वारा नसों की थकावट दूर हो जाती है। उनको पर्याप्त आनन्द होता है और व्यायाम के द्वारा वे जिस स्थिति में आने को बाध्य होती हैं वे मालिश के द्वारा वहीं जम जाती हैं।

यह समस्त शरीर शास्त्रियों का स्पष्ट मत है कि शरीर को कान्ति, ओज और स्निग्धता बनाये रखने के लिए शरीर की मालिश अवश्य करनी चाहिए। परन्तु कब किस समय करनी चाहिए? इस बारे में लोगों में मतभेद है।

एक पक्ष का कहना है कि व्यायाम करने के उपरान्त जब शरीर का पसीना पूरी तरह सूख जाये तो शरीर पर मालिस करनी चाहिए। मालिश करने के बाद स्नान करना चाहिये।

दूसरे पक्ष का कहना है कि मालिश व्यायाम करने के

पहले कर लेनी चाहिये। यदि मालिश करने के बाद व्यायाम किया जाता है तो शरीर के अङ्गों को पूर्ण विकाश का उचित अवसर प्राप्त होता है।

तीसरे पक्ष का कहना है कि स्नान करने के बाद मालिश मरनी चाहिये। पहले व्यायाम किया जाये, उसके बाद स्नान और उसके बाद मालिश।

इन तीनों मतों में से प्रथम मत ही अधिक उपयुक्त एवं लाभदायक प्रतीत होता है। व्यायाम के बाद मालिश करने से शरीर की थकावट नष्ट होती है। अङ्ग-प्रत्यङ्गों को नवीन चेतना मिलती है। मालिश के बाद स्नान करने से शरीर में नवीन स्फूर्ति प्राप्त होती है।

मालिश करने के लिये तेल का प्रयोग होता है। तेल में चिकनाई अधिक होती है साथ ही साथ उसमें सरलता होती है और अपने इस विशिष्ट गुण के कारण वह शरीर के रोयों के द्वारा त्वचा में प्रविष्ट हो जाता है। शरीर में प्रविष्ट होकर वह आवश्यक चिकनाई पहुंचाता है। शरीर के आवश्तक तत्वों का पोषण करता है। सूके हुए छिद्रों को खोलता है और अन्दर रुके हुए विषैले तत्वों को बाहर लाने में सहायक होता है।

समस्त शरीर शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि शरीर को पुष्ट तथा अङ्गों को सुडोल बनाये रखने के लिये तेल की मालिश आवश्यक है। तेल के सम्बन्ध में अभी तक मत भेद चला आता है। उत्तरी भारतीय क्षेत्र में सरसों के तेल की मालिश अधिक उपयोगी समझी जाती है। महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में तिल का तेल प्रयोग किया जाता है। दक्षिण में नारियल के तेल का प्रयोग किया जाता है।

विदेशों में जैतून का तेल मालिस के लिये उपयोग होता है। विदेशों ने मालिश के महत्व को और दूसरे स्वरूप में ग्रहण किया है। वहाँ मालिश करने के केन्द्रों की व्यवस्था है। इन मालिश केन्द्रों को Massage Home (मसाज होम) कहते हैं। इन केन्द्रों में इस कार्य में निपुण महिलायें रहती हैं वे तेल के स्थान पर टॅल्कम पाउडर का प्रयोग करती हैं। इस प्रकार की मालिश का लाभ शीत देशों में तो होता है परन्तु भारत में वह सफल नहीं हो पाता है। कलकत्ते में इस तरह की पाउडर से मालिश करने वाले कई केन्द्र खुले थे मगर वे अंग्रेजी के जाने के बाद अधिक न टिक सके।

मालिश से निम्न लाभ प्राप्त होता हैं:—

१—त्वचा की चिननाई—वाह्य मौसमों, जलवायु, धूल, धूप का प्रभाव शरीर की खाल पर अवश्य होता है। मौसम के कारण खाल में शुष्कता आ जाती है। उसमें रूखापन व्याप्त होता है। मालिश करने से तेल त्वचा को साफ कर देता है। उसकी रुक्षता नष्ट हो जाती है और वह चिकनी एवं कोमल प्रतीत होती है। त्वचा को मालिश के द्वारा पर्याप्त चिकनाई प्राप्त होती है। उसका फटना बन्द हो जाता है।

२—कोमलता—कोमल शरीर देखने में सुन्दर लगता है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से कोमल शरीर उत्तम स्वास्थ्य का द्योतक है। जब तक शरीर में वीर्य की यथेष्ट मात्रा रहती है तब तक शरीर की खाल कोमल रहती है। उसमें आकर्षण रहता है। मालिश के द्वारा शरीर को वाह्य तौर पर अधिक चिकनाई प्राप्त हो जाती है। इसी कारण इसकी कोमलता में इस प्रकार और वृद्धि हो जाती है। मालिश की समता हम पालिश से कर सकते हैं। जिस प्रकार पालिश करने से पुराना

फर्नीचर चम-चमाने लगता है उसी तरह मालिश से शरीर पर चमक रहती है।

३—हलकापन—हम सभी जानते हैं कि मानव शरीर में एक प्रकार की गर्मी सदैव रहती है। इसकी एक सीमित मात्रा शरीर के लिये आवश्यक है। यह गर्मी बढ़ती और घटती रहती है। गर्मी का प्रभाव सीधा त्वचा पर होता है। जब त्वचा पर गर्मी बढ़ती है तो वह बाहर जाने का मार्ग तलाश करती है। मालिश के द्वारा शरीर की गर्मी को त्वचा पर से दूर करने में सहायता होती है। मालिश के द्वारा शरीर की गर्मी को त्वचा के ऊपर से निकाल दिया जाता है। अनावश्यक गर्मी के निकल जाने से शरीर में हलकापन आ जाता है। हलके शरीर के द्वारा यथेष्ट फुर्ती रहती है।

व्यायाम और मालिश दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। एक शरीर को शक्ति देता है और दूसरे उसे शरीर में बनाये रखने में सहायक होता है।

४—स्नान—स्नान वह आवश्यक क्रिया है जो शरीर को शुद्ध और निरोग बनाने में सहायक होती है। स्नान के द्वारा शरीर का मैल स्वच्छ किया जाता है। शरीर के आलस्य को नष्ट करते हैं। शरीर के तापमान को बनाये रखते हैं और मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम की थकावट को नष्ट करते हैं।

स्नान करना जिन कारणों से आवश्यक है वे मुख्यतः निम्नलिखित हैं:—

१—तत्व पूर्ति—हम बता चुके हैं कि हमारा शरीर पंच तत्वों से निर्मित हुआ है। इन पच तत्वों में जल एक आवश्यक तत्व है। शरीर के अन्दर रहने वाले तत्वों का सदैव

ह्रास हुआ करता है अतः समय-समय पर उसकी पूर्ती होना आवश्यक है। स्नान के द्वारा जल शरीर के समस्त अङ्गों को प्राप्त होता है।

२—स्वच्छता—जल वह गुण शील तत्व है जो समस्त प्रकार की धूल, मैल को स्वच्छ करने में समर्थ होता है। हम सभी जानते हैं कि परमाणुओं के द्वारा ही पृथ्वी का निर्माण हुआ है। यही अणु हर समय वातावरण में तैरते रहते हैं। इन अणुओं को जहाँ भी स्थूल सहारा प्राप्त हो जाता है वहीं वे बैठ जाते हैं। इस प्रकार हमारे शरीर पर नित्य धूल जमा होती है। यदि इसे साफ न किया जाये तो खाल के ऊपर मैल की पर्तें जम जायें। स्नान के द्वारा सफाई हो जाती है।

३—समताप—शरीर के अन्दर अग्नि भी एक आवश्यक तत्व के रूप में निवास करती है। इस अग्नि को समान स्थिति में रखने के लिए स्नान आवश्यक है। अग्नि का जल वेग बढ़ता है तो वह अपनी तपस बुझाने के लिए आवश्यक पदार्थों का भक्षण करती है और जब उसे कुछ नहीं मिलता तो उपयोगी पदार्थों तक को भस्म करने लगती है। जल में एक विशेषता है कि वह अग्नि को शान्त करने वाला है। यही कारण है कि आर्यों ने नियमित रूप से स्नान को अपनाया।

४—ब्रह्मचर्य रक्षा—मस्तिष्क के ऊपरी भाग में वीर्य का निवास बताया जाता है। वीर्य का सामान्य स्वभाव जमे रहना है। परन्तु उष्णता पाते ही वह तरल होने लगता है और तरल होने के बाद वह बाहर जाने का मार्ग स्वतः ही तलाश करने लगता है। स्नान के द्वारा जब रक्त, और मस्तिष्क की गर्मी शान्त हो जाती है तो वीर्य को जमे रहने में पूर्ण सहायता प्राप्त होती है। वह तरल नहीं हो पाता है। वह जमा रहता

है। स्नान करने से वीर्य रक्षा में पूर्ण सहायता मिलती है।

स्नान एक शारीरिक क्रिया है। जल से स्नान किया जाता है। स्नान के लिए उपयोग किया जाने वाला जल उपयोगी होना चाहिए। स्नान के लिए वही जल उपयोगी समझा जाता है जिसमें निम्न गुण पाए जाते हैं :—

१—स्वच्छता—स्नान के लिए प्रयोग किया जाने वाला जल स्वच्छ होना चाहिए। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से वही जल स्वच्छ माना जाता है जो सदैव बहता रहता हो। जिसमें किसी प्रकार का विषैला तत्व न हो।

स्वच्छता के दृष्टिकोण से सागर का जल स्वच्छ होता है। परन्तु उसमें नमक की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह स्नान करते समय शरीर को स्वच्छ करने की अपेक्षा चिकटा देता है।

नदी का जल परम उपयोगी माना जाता है। नदियाँ सदैव बहती रहती हैं। उसकी धारा जल को स्वच्छ करती है। उसमें जो भी गन्दगी होती है वह स्वतः ही नीचे बैठती जाती है।

कुए का जल स्वच्छ होता है। इसका कारण यह है कि कुये में जो पानी निकलता है वह पृथ्वी के गर्भ में बहने वाले स्तोत्र से आता है। पृथ्वी के गर्भ में बहने वाला स्त्रोत सदैव शुद्ध होता है क्योंकि पृथ्वी के गर्भ में वह रसायनिक क्रिया द्वारा समय-समय पर शुद्ध होता रहता है।

बड़े तालाब का जल भी शुद्ध होता है। क्योंकि बड़े जलाशयों में पृथ्वी का तल छेदन करके स्तोत्र निकाला जाता है ताकि तालाब को पर्याप्त जल सदैव उपलब्ध हो सके।

छोटे तालाब एवं पोखर का जल अशुद्ध रहता है। क्योंकि बन्द जगह में घिरे रहने के कारण उसमें कूड़ा-करकट तथा अन्य विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इस प्रकार के गन्दे जल से स्नान करना अहितकर होता है।

२—ताजगी—जब तक जल धारा में प्रवाहित रहता है तब तक उसे ताजा कहा जाता है। जब धारा से अलग कर के उसे बर्तन में रख दिया जाये तो उसकी ताजगी खत्म हो जाती है। ताजे जल से स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति आती है। काफी देर से बर्तनों में रखा हुआ जल बासी कहलाता है और वह लाभ दायक सिद्ध नहीं होता है। जहां तक सम्भव हो ताजे जल से स्नान करना चाहिये।

३--शीतोष्ण—कभी-कभी अनेकों स्थानों पर जल का ताप विशेष गर्म या ठण्डा पाया जाता है। इस प्रकार के जल का प्रयोग स्नान के लिये वर्जित है। प्राकृतिक रूप में जल का स्वभाव है कि वह गर्मियों में ठण्डा और शीत ऋतु में गर्म निकलता है। प्रकृति जल के ताप को नियन्त्रित करती रहती है। साथ ही विभिन्न परिस्थितियों में जल की यह विशेषता प्रायः नष्ट हो जाया करती है। जैसे गङ्गाजी का जल गर्मी ऋतु में बर्फ से पिघल कर आने के कारण बहुत ठण्डा रहता है। शीत ऋतु में वह और ठण्डा हो जाता है। परन्तु यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि यह दशा उसकी उस स्थान पर ही होती जो उसके उद्गम के निकट होते हैं। जैसे ही धारा आगे बढ़ती है उसकी शीतलता कम हो जाती है।

अनेकों स्थानों पर गर्म पानी के सोते भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के गर्म अथवा अति शीतल जल वर्जित हैं। विशेष

परिस्थितियों में उनके जल से स्नान करना लाभदायक हो सकता है परन्तु सामान्य परिस्थितियों में उस जल से स्नान करना निषेध है। जल वही प्राकृतिक होता है जिसका ताप ऋतु के अनुसार सहनीय हो कुये का जल सदैव प्राकृतिक अवस्था में ही प्राप्त होता है।

४—क्षार मुक्त—पृथ्वी के गर्भ में विभिन्न क्षारों का भण्डार है। जब तक पृथ्वी के गर्भ में रहता है तब तक ये सभी क्षार उसमें मिश्रित होते रहते हैं। परन्तु विभिन्न क्रियाओं द्वारा अनावश्यक क्षार नष्ट हो जाते हैं परन्तु अनेकों स्थानों पर अनेकों कारणों से क्षार नष्ट नहीं हो पाते हैं। ये जल में स्पष्ट प्रतीत होते हैं। क्षारयुक्त जल से स्नान करना सर्वदा वर्जित है।

वैसे मनुष्य के शरीर को विभिन्न प्रकार के क्षारों की आवश्यकता रहती है परन्तु क्षार स्नान के समय त्वचा पर अहितकारी प्रभाव डालते हैं। वे रोम-छिद्रों को बन्द करते हैं और अपनी विशिष्ट रासायनिक क्रिया द्वारा शरीर की खाल को नुकसान पहुंचाते हैं। क्षारों के कारण बाल चिकट जाते हैं। मुख, कान, नाक आदि पर बुरा प्रभाव होता है और खाल का चिकनापन नष्ट होकर उसमें शुष्कता आती है।

जहाँ तक जल का प्रश्न है वहाँ तक स्नान के लिये शुद्ध जल का उपयोग करना चाहिए। परन्तु जिन प्रदेशों में सदैव शीत का प्रकोप रहता है वहाँ जल को गर्म करके स्नान करना उत्तम है। भारत के पहाड़ी स्थानों पर गर्म जल प्रयोग किया जाना चाहिये।

दो प्रकार के जल का मिश्रण सर्वथा वर्जित है। जब गर्म जल से स्नान करना हो तो जल को उतना ही गर्म करें जितना

आवश्यक हो। थोड़ी मात्रा में जल गर्म करके उसमें शीतल जल अलग से मिलाना अहित कर होता है। मिश्रण सदैव घातक है।

केवल जल को शरीर पर उडेल लेना ही स्नान की पूर्ति नहीं है। स्नान के लिये जल परमावश्यक तत्व है। परन्तु स्नान की अपनी निश्चित क्रिया है। उस क्रिया द्वारा किया गया स्नान ही शरीर के लिये लाभ दायक होता है।

स्नान की क्रिया विधि

१—स्नान करने का स्थान एकान्त में होना चाहिए ताकि अनावश्यक हस्तक्षेप का भय न हो।

२—स्नान करने से पहले शरीर पर मालिश कर लेनी चाहिए और शरीर को थोड़ी देर खुला रखें ताकि रक्त की गर्मी कम हो सके। गर्म शरीर पर ठण्डा जल पड़ने से हानि होती है।

३—स्नान करते समय प्रारम्भमें जल को सिर पर डालें। पहले पैरों को कदापि न धोयें।

४—शरीर को खुब रगड़ें। पानी डालकर शरीर रगड़ने से बदन का मैल फूल जाता है और शीघ्र ही उतर जाता है। मैल को साफ करने से शरीर हलका होता है।

५—साबुन का यदि प्रयोग करना हो तो शरीर पर पहले पानी डालकर साबुन लगा लें और फिर शरीर को रगड़ कर मैल छुटायें। यदि आवश्यक हो तो खुरदरे कपड़े से भी मैल छुड़ाया जा सकता है।

६—जब शरीर स्वच्छ हो जाये तो स्वच्छ सूखे कपड़े से

शरीर को रगड़ कर पोंछ डालें। शरीर का पानी सुखाने के लिए खुरदरा कपड़ा प्रयोग करना श्रेष्ठ है क्योंकि उसके द्वारा शरीर का सारा पानी सूख जाता है और साथ ही शरीर का मैल भी हट जाता है।

आधुनिक लोगों में रूऐंदार टरकिश टावल का प्रयोग बढ़ गया है। परन्तु ये रूयेंदार तोलिये लाभ के स्थान पर हानि ही करते हैं। इनके रेशे नरम होते हैं और यह शरीर की रगड़ से सहज ही टूट जाते हैं और शरीर के रोग में फँस कर उनके छिद्रों को बन्द करते हैं।

७—स्नान के बाद धुले हुए वस्त्र धारण करें। इन वस्त्रों के धारण करने से शरीर में फुर्ती आती है तथा गन्दे कपड़ों से शरीर सुरक्षित रहता है।

स्नान एक क्रिया है। इसका मानव शरीर पर गहरा प्रभाव होता है। यदि सतंकता से स्नान को नियमित रूप से किया जाये तो मनुष्य को रोग कदापि नहीं सता सकता है। स्नान का अभिप्राय केवल शरीर पर जल लुढ़का लेना ही नहीं है वरन शरीर की वास्तविक सफाई से है।

उबटन शरीर के मैल को स्वच्छ करने वाला एक मात्र साधन है। इन दिनों मनुष्य अधिक आलसी हो गया है इस कारण वह उबटन के स्थान पर साबुन का प्रयोग करने लगा।

उबटन—उबटन एक क्रिया है। शरीर के मैल को छुड़ाने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। स्नान के पहले उबटन को शरीर पर अच्छी तरह रगड़ कर मला जाता है। शरीर का मेल उबटन के साथ मिल जाता है और बत्तियों के रूप में अलग हो जाता है। उबटन के पदार्थं शरीर के रोंयें द्वारा शरीर

में प्रवेश कर जाते हैं। त्वचा स्वच्छ हो जाती है और रोयें दार खुल जाते हैं।

उबटन कितनी ही प्रकार से वनाया जाता है। साधारणतया उबटन में बेसन, सरसों या तिल का तेल होता है। कुछ सुगन्ध के लिये केसर, कपूर आदि भी मिला लेते हैं। उबटन में पानी बहुत कम डाला जाता है ताकि वह गाढ़ा रहे। कड़ा उबटन शरीर पर आसाना से मला जा सकता है और उसकी रगड़ से मैल छूटने लगता है।

कहा जाता है प्राचीन समय में विभिन्न प्रकार के उबटन प्रयोग में लाये जाते थे और वे मूल्यवान भी होते थे। यह अवश्य है कि उबटन मलने के लिये दूसरे आदमी की सहायता लेना अनिवार्य होता है। तथा उबटन मलकर स्नान करने में समय अधिक लगता है।

साबुन—आधुनिक समय में मनुष्य आलसी हो गया है, वह हर कार्य को बिना अधिक परिश्रम उठाये जल्दी से जल्दी समाप्त कर देना चाहता है। स्नान के समय साबुन उसकी सहायता करता है क्योंकि साबुन का प्रयोग सरल है और उसकी सहायता से बिना अधिक समय लगाये हुये स्नान का कार्य पूरा कर लिया जाता है।

वास्तव में देखा जाये तो साबुन स्नान को लाभ प्रद बनाने में असफल सिद्ध हुआ है। साबुन के निर्माण में कास्टिक का प्रयोग होता है। कास्टिक तीव्र पदार्थ है। उसमें मैल काटने की क्षमता है। साथ ही वह शरीर की खाल को झुलसाने वाले तत्वों से पूर्ण होता है। साबुन में एक तरह का चिकनापन होता

है। उसके झाग रोम-छिद्रों में भर जाने वाले होते हैं। यदि ये झाग पूरी तरह से स्वच्छ नहीं हो जाते हैं तो वे शरीर की खाल को दूषित करते हैं और उससे चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

निदान साबुन से स्नान करते समय मनुष्य को यह आवश्यक है कि वह अपने शरीर को खूब रगड़ कर साफ करे और इस बात की पूर्ण सतर्कता बरते कि साबुन का कोई भी तत्व उसकी खाल में छिपा न रहने पाये।

स्नान के बाद शरीर को खुली हवा से बचाना जरूरी है। अतः स्नान करने के तुरन्त ही वस्त्र पहन लेने चाहिये। स्नान करने के बाद धूप में खड़े न रहें और न स्नान करने के तुरन्त बाद ही आग के पास बैठें।

स्नान के समय सावधानी

१—कदापि किसी अन्य मनुष्य का प्रयोग किया हुआ साबुन शरीर पर न मलें। प्रायः देखा जाता है कि एक ही साबुन का प्रयोग बहुत से लोग करते हैं। यह एक बुरी आदत है और इससे हानि हो सकती है।

२—कदापि किसी अन्य मनुष्य के द्वारा प्रयोग की हुयी तौलिया से शरीर न पोंछें। एक ही तौलिया से जब कई मनुष्य शरीर पोंछते हैं तो उनको एक दूसरे चर्म रोग लग जाया करते हैं।

३—सदैव मुंह पोंछने के लिये अलग तौलिया का प्रयोग करें। यदि एक ही तौलिया हो तो पहले मुंह को पोंछ डालें तब उसका प्रयोग शरीर के अन्य अङ्ग पोंछने के लिये करें।

कभी-कभी शरीर के पैर आदि को पहले पोंछने के बाद मुँह पोंछने से विषाक्त तत्व नेत्र आदि में विकार उत्पन्न कर सकते हैं।

४—सदैव स्नान करके शरीर पोंछने के तुरन्त बाद ही तौलिये को धो डालिये ताकि एक बार शरीर पोंछने के बाद बिना धुले उसका प्रयोग न हो सके।

५—स्नान करने के बाद नित्य धुली हुई बनयान तथा अन्डर वीयर पहनना चाहिये। क्योंकि यही वे वस्त्र हैं जो शरीर से हर समय चिपटे रहते हैं। निदान उनका नित्य धुला होना आवश्यक है।

स्नान वास्तव में सबसे अधिक आवश्यक क्रिया है। इसके द्वारा शरीर हलका हो जाता है मनमें स्फुर्ति आती है। नेत्र रोग नष्ट होते हैं और शरीर का ताप सामान्य रहता है। शरीर का ताप सामान्य रहने से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। वीर्य खण्डित नहीं होता।

भारत की जलवायु में प्रतिदिन स्नान अनिवार्य है परन्तु दुःख तो यह है कि पश्चिमी शीत देशों की नकल करने वाले लोग स्नान से डरने लगे हैं। यूरोप आदि देशों में भयंकर शीत के कारण स्नान उतना अनिवार्य नहीं है जितना भारत में है।

५—भोजन—भोजन वह आवश्यक तत्व है जिसके द्वारा शरीर का ढाँचा पुष्ट होता है तथा सक्रिय बना रहता है। जिस प्रकार मोटर आदि को चालू रखने के लिए तेल पैट्रोल आदि आवश्यक होते हैं उसी तरह मनुष्य के लिये भोजन आवश्यक होता है।

भोजन के दो प्रमुख गुण होते हैं—(१) वह शरीर के

समस्त तत्वों और अंगों को शक्ति प्रदान करता है । (२) वह शरीर को गतिशील बनाता है।

जो भोजन इन दो गुणों से युक्त नहीं होता है वह बास्तव में भोजन नहीं है । इन सभी बातों को दृष्टिकोण में रखते हुए भोजन को पोष्टिक तथा सामान्य दो प्रकार से बांटा जाता है ।

पौष्टिक वह आहार कहलाता है जिसमें निम्न गुण विद्यमान होते हैं:—

१—जो भार में हलका हो।

२—जिसमें शरीर को पुष्ट करने वाले समस्त विटामिन मौजूद हों ताकि वह शरीर की क्षति पूर्ति करने में पूर्णतया समर्थ हो।

३—जिसके ग्रहण करने से शरीर के आमाशय, पाचक संस्थान आदि किसी भी विशेष अंग पर अत्याधिक भार न पड़ता हो अथवा जो बिना किसी विशेष परेशानी के शीघ्र ही पच जाने वाला हो ।

जिस आहार को ग्रहण करने से शुद्ध रक्त का निर्माण हो सके। वीर्य पुष्ट एवं शुद्ध रह सके ।

पुष्ट आहार में निम्नलिखित खाद्य पदार्थों का होना आवश्यक समझा जाता है: —

१–चिकनाई वाले पदार्थ—घी, दूध, मक्खन, दही, क्रीम, पनीर, वनस्पति तेल, खाद्य तेल ।

२–अनाज–गेहूं, चना, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा दालें ।

३–आमिष—बकरे का माँस, भेड़ का माँस, मुर्गे का माँस, पक्षियों के माँस. मछली, अण्डा।

४–साग-तरकारी—आलू अरबी, कटहल, रतालू, जमीकन्द, प्याज, लहसुन, गोभी; मटर, बेगन।

इस प्रकार के पौष्टिक आहार में एक अवगुण यह है कि इनको पचाने के लिये पाचक संस्थान को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। आमाशय पर वजन पड़ता है और उससे मनुष्य के शरीर में आलस्य बना रहता है। यदि पौष्टिक भोजन करने के बाद डट कर परिश्रम नहीं किया जाता है तो मनुष्य आलसी रहेगा और उसका पेट आगे की ओर बढ़ जायेगा। उसकी पाचन क्रिया गड़बड़ हो जायेगी। उसकी आतें कमजोर होंगी। पौष्टिक आहार को अधिक मात्रा में ग्रहण करने से काम वासना बढ़ती है और ब्रह्मचर्य खण्डित हो जाता है।

निदान ब्रह्मचारी को चाहिये कि वीर्य रक्षा के लिये वह अपने आहार पर पूर्णतया नियंत्रण रखे ताकि उससे उसका शरीर पुष्ट अवश्य हो परन्तु उसका ब्रह्मचर्य नष्ट न हो सके।

शरीर विज्ञान के विशेषज्ञों ने आहार को तीन प्रकार के भागों में उनके गुण के अनुसार विभाजित किया है। भोजन के गुणों के अनुसार उनकी श्रेणी निम्न है:—

१—सात्विक भोजन

२—राजसी भोजन

३—तामसी भोजन

सात्विक भोजन

सात्विक भोजन वह होता है जिसके ग्रहण करने से प्राणी की वृति सात्विक बनी रहती है। उसकी समस्त इन्द्रियाँ सात्विक प्रवृत्तिमय रहती हैं। काम का वेग उसे नहीं सताता। वह कृपालु, दयावान, सत्यवक्ता, तथा आध्यात्मिक शक्ति से बना रहता है।

सात्विक भोजन निम्न हैं—

१—गेंहूं, चावल, जौ

२—गौ का घृत, धारोष्ण दूध, एक उबाल का दूध

३— हरी साग-भाजी-पालक, मूली, लौकी, तौरई,

४—गुड़, चीनी का न्यूनतम प्रयोग की जाने वाली मिठाइयाँ, ताजा फल जो गरिष्ठ न हों।

इस प्रकार के आहार ग्रहण करने वाले प्राणी की प्रकृति सात्विक रहेगी और उसका वीर्य अपने स्थान से च्युत नहीं होगा।

राजसी भोजन

राजसी भोजन वह होता है जिसे ग्रहण करने से प्राणी को इन्द्रिय सूखों की प्राप्ति होती है। जिसमें स्वाद और उसके शक्ति वर्धक गुणों की प्रधानता होती है।

१—मसालेदार चिरपिरे खाद्य पदार्थ।

२—मिठाइयाँ, रबड़ी, मलाई आदि।

३—घी, मक्खन, मेवा युक्त आदि व्यंज्जन।

४—तले हुए खाद्य पदार्थ।

५—गरिष्ठ जायके दार साग-सब्जी ।

इस प्रकार के भोजन निसन्देह शरीर को अधिक पुष्ट करते हैं। परन्तु वे इतने कठोर होते हैं कि उनको पचाने के लिये शरीर को बहुत अधिक परिश्रम करना होता है। जब आमाशय को अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करना होता है तो शरीर के रक्त में गर्मी की मात्रा बढ़ जाती है और शरीर गर्म हो जाने से वीर्य खण्डित होने लगता है। जब आमाशय में कब्ज का विकार बढ़ता है तो वीर्य गरमी के कारण पतला हो जाता है और वह मल-मूत्र मार्ग से बाहर आने लगता है।

तामसी भोजन

तामसी भोजन वह होता है जिसको हिन्दूओं में उसके दुर्गुणों के कारण अखाद्य माना जाता है। परन्तु फिर भी मनुष्य अपनी आदत से लाचार होकर खाते हैं।

१—मांस, मछली, अण्डा

२—प्याज, लहसन, तथा तेज मसाले

३—अत्याधिक तले हुये पदार्थ तथा तेज मसाले

४—तेल का बहुतायत से प्रयोग

५—शराब, भांग आदि नशीले द्रव्य

तामसी आहार के द्वारा मनुष्य की जीभ को स्वाद प्राप्त होता है। नशे के आधार पर वह इन कठोर भोज़नों को पचाने की चेष्टा करता है। तामसी भोजन के द्वारा प्राणी के शरीर का ताप बढ़ा रहता है। वह स्वभाव से हिंसक, क्रूर, क्रोधी एवं लम्पट हो जाता है।

जहाँ तक ब्रह्मचर्य से रहकर वीर्य रक्षा का प्रश्न है तो

प्राणी को राजसी एवं तामसी भोजन को त्यागना चाहिये और शुद्ध सात्विक भोजन ग्रहण करना चाहिये। आहार का असर शरीर और मस्तिष्क दोनों पर ही पड़ता है।

जो प्राणी ऋतु के अनुसार भोजन ग्रहण करते हैं वे वीर्य रक्षा में पूरी तरह सफल होते हैं। खाना पवित्रता से बनाना चाहिये और प्रसन्न चित्त होकर उसे ग्रहण करना चाहिये तभी वह लाभ दायक सिद्ध होता है।

६ परिश्रम—मानव जीवन की यथार्थता एवं सार्थकता परिश्रम ही में नियंत्रित है। परिश्रम वह कसौटी है जो मनुष्य की मनोवाँछित इच्छाओं की पूर्ति करती है। और साथ ही उसे कार्य-रत रखती है। बिना परिश्रम के मनुष्य की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और उसके जीवन का आकर्षण मारा जाता है।

परिश्रम दो प्रकार के होते हैं—

१—मानसिक २—शारीरिक

१. मानसिक— वह परिश्रम होता है जिसमें मस्तिष्क की शक्तियों का उपयोग किया जाता है। मस्तिष्क शरीर का वह केन्द्र स्थल है जिसे शरीर के समस्त अङ्गों की अपेक्षा सबसे अधिक परिश्रम करना होता है। इस प्रकार के परिश्रम करने वालों की श्रेणी में अध्यापक, वैद्य, वकील, व्यापारी, राजनीतिज्ञ, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि आते हैं।

शारीरिक परिश्रम-वह होता है जिसमें शरीर के अङ्गों को परिश्रम का भार सहन करना होता है। हाथ, पैर आदि से ही कार्य करना होता है बुद्धि का प्रयोग कम हाथ-

पैर का प्रयोग अधिक होता है। इस श्रेणी में बढ़ई, सुनार, राज-मरजू, कृषक, कारीगर, मजदूर आदि आते हैं।

परिश्रम के द्वारा मन को शान्ति हो। इन्द्रियों पर भार पड़ता है। शरीर का कार्यरत रहने से भोजन को पचाने में सहायता मिलती है। यदि परिश्रम न किया जाये तो शरीर में नाना प्रकार के रोग उठ खड़े होते हैं। शरीर के विभिन्न अंग अविकसित रह जाते हैं। आहार पूरी तरह नहीं पच पाता है। परन्तु परिश्रम करते समय एक बात का विशेष ध्यान जरूरी है कि उतना ही परिश्रम किया जाये जितना आवश्यक हो। जिसके करने से शरीर पर अधिक मात्रा में थकावट न आ सके।

परिश्रम का अन्त थकावट में होता है। जब शरीर को परिश्रम करना पड़ता है तो उसे मानसिक एवं शारीरिक थका-वट अवश्य सताती है। यह थकावट ही वास्तव में वह मूल स्तोत्र है जो आहार को भक्षण करके शरीर में नवीन रक्त को बनाने में सहायक होता है।

७, मनोरंजन—परिश्रम द्वारा थके हुए शरीर को आराम की आवश्यकता होती है। शयन करने से शरीर को पूर्ण आराम मिलता है परन्तु शयन एवं विश्राम की भी एक सीमा है। सीमा से अधिक किया हुआ विश्राम शरीर को आलसी और काहिल बना देता है और मनुष्य की कार्यशक्ति को क्षीण करता है।

मनोरंजन वह साधन है जिसके द्वारा प्राणी को मान-सिक विश्राम प्राप्त होता है। जब मन प्रसन्न होता है तो वह इन्द्रियों की थकावट को भुला देता है। शरीर को थकावट

मानसिक मनोरंजन के द्वारा नष्ट हो जाती है। मन में नवीन प्रसन्नता एवं उत्फुल्लता प्राप्त होती है।

मनोरंजन कई प्रकार के होते हैं। परन्तु उसका यदि सूक्ष्म वर्गीकरण किया जाये तो वे दो श्रेणी में विभाजित किये जा सकते हैं:—

१—स्वस्थ्य २—अस्वस्थ्य

१. स्वस्थ्य—स्वस्थ्य मनोरंजन वे कहलाते हैं जिनके द्वारा मानसिक थकावट नष्ट होती है। शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस श्रेणी में—व्यायाम, खेल-कूद, पुस्तकावलोकन भ्रमण, आदि आते हैं।

२. अस्वस्थ्य—अस्वस्थ्य मनोरंजन वे होते हैं जिनके द्वारा थकावट एक ओर नष्ट होती परन्तु दूसरी ओर बढ़ती है। जैसे, सिनेमा, नौटंकी, नाटक, गाना,बजाना हास परिहास, ताश, चौपड़ आदि के खेल, अधिक थकादेने वाले खेल।

इस प्रकार के मनोरंजनों से शरीर की थकावट अवश्य कम हो जाती है पर उनसे मानसिक थकावट की वृद्धि होती है। मन पर इस तरह के मनोरंजनों का एक भार हो जाता है। अधिक परिश्रम से मनोरंअन स्वतः एक परिश्रम ही होता है।

वीर्य की रक्षा करने के इच्छुक प्राणियों को चाहिये कि वे स्वस्थ्य मनोरंजनों का उपयोग ही करें ताकि उससे उन के शरीर की आवश्यकता की पूर्ती हो तथा उनके चरित्र का विकास हो सके।

ब्रह्मचर्य व्रती के लिये पालन करने योग्य नियम

१—मन में स्पष्ट रूप से सदैव धारणा रखे कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूं और वीर्य की रक्षा करना मेरा धर्म है।

२—सदैव शुद्ध जल को ग्रहण करे।

३—समाज की मर्य्यादा में रहे।

४—गुरुजनों के प्रति श्रद्धा रखे। उनके वचनों को ग्रहण करके उनका अनुकरण करे।

५—वेदों का अध्ययन करे। विद्याभ्यास में रुचि रखे। उत्तम पुस्तकों का ज्ञान करके उनके अनुसार आचरण करे।

६—शरीर में आलस्य को न आने दे। दोपहर के समय कभी शयन न करे।

७—सत्संगति करे। दुष्ट जनों से बचे।

८—सदैव सत्य बोले। उसकी वाणी मृदु हो।

९—क्रोध को त्यागे।

१०—मैथुन का त्याग करे। मस्तिष्क को निर्मल रखे। स्त्री सुख की कल्पना भी न आने दे। यदि विवाहित हो तो अपनी स्त्री के साथ वर्ष में एक या दो वार ही सम्भोग करे।

११—नरम वस्त्रों की शैया पर विश्राम न करे। काठ के तख्त पर शयन करे।

१२—गायन में यदि रुचि हो तो भगवत् भजन गाये।

१३—इत्र,फुलेल आदि सुगन्धित द्रव्यों को त्यागे।

१४—अल्प निद्रा ले।

१६. भोजन में राजसी एवं तामसी वस्तुओं का प्रयोग न करे। मांस, मदिरा, अण्डा आदि से दूर रहे। मादक द्रव्यों से सद्दैव दूर रहे।

१७. अधिक स्नान न करे।

१८. नियमित दिनचर्य्या के अनुसार कार्य करे। समय पर निद्रा ग्रहण करे और समय पर उठे।

१९. नग्न स्त्री की ओर न देखे।

२०: एकान्त में स्त्रियों से भाषण, वार्तालाप अथवा हास—परिहास न करे।

२१. गुप्त-इन्द्रिय का स्पर्श न करे।

२२. शयन के समय हाथ मुंह और पैर धोकर शयन करे।

२३. मूत्र आदि को अधिक न रोके।

२४. कब्ज होने पर शीघ्र ही उपचार करे। नियम से प्रातः उठने पर एक लोटा ताजा जल पीकर शौच को जाये और नित्य दाँतों को दातुन करे।

२५. कम बोले। गाली, मदभरी बातें, अपमान जनक आदि शब्दों का प्रयोन न करे।

२६. नियम से पूजन, संध्योपासन आदि करे।

२७. परिवार के लोगों एवं मित्र बन्धुओं का ख्याल रखे। उनको कष्ट न होने दे।

यह सत्ताईस नियम पालन करने वाला विवाहित होकर अपनी स्त्री मात्र से रमण करता हुआ भी ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है।

वैदिक धर्म और स्वास्थ्य

आर्य वास्तव में बड़े सुसंस्कार वाले थे। वे मानव मनोविज्ञान के पण्डित थे। उनको आभास था कि जब तक मनुष्य के दिल में किसी बात का डर नहीं बिठाया जाता तब तक वह किस कार्य में दिलचस्पी नहीं ले पाता है। निदान उन्होंने समाज का निर्माण करते समय धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने उन अलौकिक धर्म ग्रंथों की रचना की जिनके द्वारा मनुष्य में धर्म के प्रति भय और श्रद्धा जागृत हो सके। जो उन्होंने सोचा वह सच था। इसी विचार से अविर्भूत होकर उन्होंने संसार की समस्त श्रेष्ठ बातें धर्म में डाल दी।

इस दृष्टि कोण को ध्यान में रखकर यदि सनातन धर्म के महत्व को समझने की चेष्टा की जाये तो सारी बातें पूरी तरह स्पष्ट हो जाती हैं। सभी लोग आसानी से समझ सकते हैं कि धर्म को किस वज्ञानिक दृष्टिकोण से संजोया गया है।

१. परमेश्वर—सनातन धर्म की आधार शिला परमात्मा के अस्तित्व पर रखी गयी है। परमपिता परमेश्वर वास्तव में है या नहीं इसका निर्णय विवादास्पद हो सकता है। परन्तु धर्म का कथन है कि सृष्टि का नियंत्रण करने वाली एक परम शक्तिशाली शक्ति है उसी को परमेश्वर की संज्ञा दी जाती है।

बिन भय होय न प्रीति॥

एक अनादि नियम है। आत्माजो मानव शरीर की नियन्ता है यदि उसे मुक्त छोड़ दिया जाये और उसपर नियंत्रण न रखा जाये तो वह उच्छृंखल हो सकती है। निदान आत्मा को बुराई

से बचाने और अच्छे कर्म में लगने की प्रेरणा देने के लिये ही परमेश्वर की सृष्टि हुई अथवा परमेश्वर के अस्तित्व को माना गया है।

"परमेश्वर समस्त सृष्टि का नियन्ता है। आत्मा उसकाधर है। उसके अलौकिक तेज से ही आत्मा को बल प्राप्त होता है और उसकी प्रेरणा से ही प्राणी कर्म में रत होता है।' धर्म की इस मान्यता को यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचा जाये तो उसकी यथार्थता का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

मनुष्य के शरीर में आत्मा एक ज्योति है। इस ज्योति का स्वरूप क्या है ? कोई नहीं जानता। मगर ऐसा आभास अवश्य होता है कि वह ज्योति अलौकिक है। उसकी प्रेरणा से ही प्राणी अपने कर्त्तव्यों में रत होता है। कर्म करने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है। जिसका शरीर जितना स्वस्थ्य होता है वह उतना ही कर्मठ होता है। स्वास्थ्य के लिये ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है। क्योंकि पिछले परिच्छेदों में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि वीर्य शरीर का राजा है।

वीर्य वह शक्ति है जिसके द्वारा मानव को बल, आयु आरोग्य एवं तेज प्राप्त होता है। यह एटम से हजार गुना शक्तिशाली है। इसकी रक्षा करने के लिये ही धर्म की व्यवस्था जान पड़ती है। परमेश्वर का अस्तित्व बताने का मूल अभिप्राय स्पष्ट है। प्राणी के हृदय में एक अलौकिक शक्ति के प्रति निष्ठा एवं भय उत्पन्न करके उसको उच्छृंखलमनोवृति को रोकने की चेष्टा को गयी है।

२. धर्म——धर्म को परमेश्वर का स्वरूप मानाजाता है। धर्म क्या है ? धर्म एक व्यवस्था है जो प्राणी के मानसिक विचारों का पोषण करता है। इसके द्वारा मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापों को एक निश्चित श्रृंखला में बांधा गया है।

धर्म पालक की महत्ता को विशिष्ट गौरवमय स्थान दिया जाता है। उसका कारण स्पष्ट है। धर्म की व्यवस्था से प्राणी की आत्मा को बल मिलता है। वीर्य की वृद्धि होती है। प्रथम आत्मा और दूसरे शरीर स्वस्थ्य रहता है। प्राणी में ओज आती है। इन्हीं तमाम विचारों से प्रभावित होकर प्राणी ने मानव धर्म की रचना की। धर्म विधान की रचना करने वाले पण्डितजनों के सम्मुख जो भी समाज के उत्थान के लिये योजनायें थीं उन्होंने उन सभी का पूर्ण ध्यान रखा और उन्होंने उन्हें धर्म के साथ जोड़ दिया ताकि प्राणी उनका पालन धर्म मान कर ही कर सके।

धर्म के चार चरण होते हैं।

१—जीवात्मा की शान्ति।

२—राष्ट्र का हित।

३—समाजकी मर्य्यादा।

४—मानव का व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं उत्कर्ष।

१. जीवात्मा की शान्ति——प्राणी मात्र जन्म जात से नियंत्रण में बंधना नहीं चाहता। उसको यदि उसके ही ऊपर छोड़ दिया जाये तो निश्चय ही वह अपनी सीमाऐं लांघ कर ऐसे कर्म कर बैठे जो केवल उसके ही लिये नहीं वरन मानव

मात्र के लिये भी हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। निदान प्रारम्भ से ही उसमें उन विचारों का उदय होना अति आवश्यक है। जिसके द्वारा वह अपने जीवन को सन्तुलित करके सन्तोष प्राप्त कर सके।

भय और ज्ञान इस कार्य में उसके सहायक होते हैं। उच्छृंखल मनोवृति को भय के कारण रोका जाता है। ज्ञान के द्वारा प्राणी उत्तम कार्य करने की प्रेरणा पाता है।

उदाहरणार्थ—

बालक स्वभाव से ही उद्दण्ड होता है। वह जलती हुई आग में हाथ दे सकता है। मगर माता-पिता एवं अन्य गुरुजनों के भय के कारण वह ऐसा करने में हिचकता है। उसे भय रहता है कि यदि उसने उनकी आज्ञाओं का उलंघन किया तो अवश्य ही उसे दण्ड मिलेगा।

मगर जब उसे ज्ञान हो जाता है कि अग्नि से हाथ जल जाता है और उसकी पीड़ा उसे सहन करनी पड़ सकती है तो वह स्वतः ही उससे बचने की चेष्टा करता है। अपने शरीर, वस्त्र आदि की रक्षा करता है। यदि कार्यवश उसे अग्नि का प्रयोग करना ही होता है तो वह उसका स्पर्श करने के लिये चिमटे कलछी आदि का सहारा लेता है।

धर्म का भी सर्व प्रथम यही कर्त्तव्य है। वह प्राणी को परमेश्वर के प्रति भयभीत रखता है। वह उसे उपयोगी ज्ञान प्रदान करता है ताकि प्राणी अपने जीवन में उसका उपयोग कर सके। उचित रीति से किसी कार्य को करने पर प्राणी को

जो प्रसन्नता होतो है वही प्रसन्नता उसको शान्ति प्रदान करती है।

धर्म का प्रथम गुण है कि वह प्राणी को बुराइयों से रोके। अतः धर्म से च्युत होने का भय तथा परमेश्वर का भय प्राणी के शैशव से ही उसके हृदय में उत्पन्न कर दिया जाता है। प्राणी की आत्मा में यह बात अच्छी तरह भर दी जाती है कि यदि उसने किसी वर्जित कार्य को किया अथवा धर्म के विपरीत आचरण किया तो परमेश्वर उससे कुपित होगा। उसका धर्म नष्ट हो जायेगा। इस कारण किसी भी बुराई को करते समय प्राणी की आत्मा उसे रोकती है। यह बात अलग है कि वह किसी आवेश के वशीभूत होकर उस कार्य को कर डाले। किसी अच्छे कर्म को वह धर्म समझ कर जब करता है तो उसे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। हो सकता है कि उस कर्म के द्वारा उसे कुछ कठिनाइयाँ भी उठानी पड़ें मगर वह उन सभी को सहर्ष सहन करता है। उसे उनसे कोई विराग नहीं होता। उसे आत्मिक शान्ति के सहारे हँसते २ सहलेता है।

२. राष्ट्र का हित—धर्म का महत्वपूर्ण पक्ष राष्ट्र के हित में होता है। प्रत्येक राष्ट्र चाहता है कि उसके नागरिक वलिष्ठ पौरुषी और राष्ट्रीयता में बंधे हों। धर्म प्रत्येक व्यक्ति को अपने बल, शरीर के प्रति जागरूक रखता है और साथ ही उसमें राष्ट्रीयता की भावना भरता है। आर्य जब भारत में आकर बस गये और उन्होंने भारत को अपना राष्ट्र स्वीकार कर लिया तो उन्होंने भारत का गौरव बढ़ाने की सदैव चेष्टा की यह निर्विवाद सत्य है कि विश्व में आर्य जाति अनेकों देशों में जाकर बस गयी। संसार की सभी जातियों में आर्य सबसे अधिक

बुद्धिमान पराक्रमी एवं ज्ञानवान थे। उन्होंने अपने २ राष्ट्र को सुसंस्कृत किया और उसका गौरव बढ़ाने की चेष्टा की।

इतिहास साक्षी है कि सभी धर्म वालों ने अपने धर्म का प्रचार विदेशों में जाकर किया कुछ उन विदेशों में जाकर बस भी गये मगर वे उन विदेशों में रहते हुये भी अपनी राष्ट्रीयता को न छोड़ सके। आजके इस युग में ही—

भारत के जो भी हिन्दू विदेशों में जाकर बस गये हैं क्या उन्होंने वहाँ अपने धर्म को त्याग दिया है? नहीं वे आज भी अपने को हिंदू कहने में गौरव समझते हैं और भारत को अपनी मातृभूमि मानते हैं।

पारसी भारत में कई सौ वर्ष पहले आये थे। उनकी कई पीढ़ी भारत में गुजर गयी हैं मगर आज भी वे अपने धर्म का पालन करते हैं और स्वयं को फारस से सम्बन्धित बताते हैं। यह अवश्य है कि सदियों से रहने के कारण वे अपने को पूर्ण भारतीय मानते हैं मगर धर्म के कारण उनका नेह अभी तक अपने उद्‌गम स्थान के साथ जुड़ा है।

यद्यपि भारत में रहने वाले मुसलमान भारत को अपना राष्ट्र मानते हैं मगर वे इस बात पर पूर्ण विश्वास करते हैं कि उनका मजहब मक्का शरीफ से प्रारम्भ हुआ था और वे अपनी उस निष्ठा को बनाये रखने के लिये हज जाते हैं।

इन तमाम बातों को विचार में रखते हुए यह स्पष्ट है कि धर्म राष्ट्रीयता का पोषक है। आर्यों ने धर्म की व्यवस्था करते समय देश के सभी भागों में अपनी जड़ों को पनपाया ताकि देश के प्रत्येक भाग का सम्बन्ध अन्य सभी भागों से रहे। गङ्गा की

वन्दना करते समय कृष्णा और कावेरी को भी पूर्ण गौरव प्रदान किया गया है। यदि हिमालय को पर्वतराज कहा गया है तो सागर को भी रत्नागार बताया गया है। इन सभी बातों का एक ही अभिप्राय है कि यहां के रहने वाले समस्त देश को अपना मानें। उनमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी जा सके।

३ समाज की मर्य्यादा—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में रहना है। समाज के सभी सदस्यों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना है। व्यक्तिगत लाभ को समाज के सामूहिक लाभ के सन्मुख ठुकराना है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो समाज की मर्यादा भङ्ग होती है और सभी प्राणियों को कष्ट होता है।

धर्म की व्यवस्था है कि धर्म कर्म करते समय बान्धुवों को एकत्रित किया जाय। बन्धु-बान्धव कौन हैं ? वे समाज के ही सदस्य हैं। आपस में मिलने से आपस में प्रेम बढ़ता है। एक दूसरे के प्रति मित्रता एवं सौहार्द बढ़ता है।

धार्मिक उत्सव, त्यौहार, पर्व, यात्रा, कुम्भ, आदि सभी समाज की मर्य्यादा बनाये रखने की इच्छा से ही रखे गये हैं। इस बहाने समाज के सभी सदस्य एक ही कार्य को हर्ष और उत्साह से करते हैं। समाज में एक रूपता आती है सभी का आपस में नेह बढ़ता है। उदाहरणार्थ—

दीपावली, होली, रक्षा बन्धन, जन्माष्ठमी, दशहरा, चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्यग्रहण स्नान, यात्राऐं कुम्भ आदि सभी विशेष उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर ही प्रतिपादित किये गये हैं। वर्षा

के बाद घरों, मुहल्लों एवं नगरों की सफाई आवश्यक होती है। यदि यह सफाई का कार्य व्यक्ति विशेष की इच्छा और सुविधा पर छोड़दिया जाये तो समाज की मर्य्यादा कायम न रह सके। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए मर्य्यादा बांध दी गयी कि दीपावली के त्योहार से पूर्व सफाई का कार्य पूर्ण हो जाना चाहिये। फल स्पष्ट है कि दीपावली से पहले भारत का प्रत्येक नगर, ग्राम, मुहल्ला और घर साफ हो जाता है।

इसी प्रकार यदि ध्यान से देखा जाये तो सभी धर्म कर्म के पीछे एक विशिष्ट उद्देश्य निहित है। उसकी व्यवस्था ही समाज को दृष्टिकोण में रखकर की गयी है।

४. मनुष्य का व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं उत्कर्ष—

मनुष्य समाज. देश की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। यही कारण है कि धर्म व्यवस्था में इस इकाई पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है। मनुष्य का स्वास्थ्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा ही व्यक्ति, समाज और देश लाभान्वित होता है। इसीलिये समस्त स्वास्थ्य प्रद नियम धर्म में ढाले गये हैं ताकि धर्माचरण करने वाला प्राणी पूर्णतया स्वस्थ रहे और वह सभी के लिये उपयोगी रह सके। उदाहरणार्थ—

१—सूर्योदय के पहले उठना—ब्राह्ममुहूर्त में शैय्या त्याग देने वाला मनुष्य रोगों से मुक्त रहता है! उसका वीर्य शक्तिशाली होता है। वह स्वास्थ्य लाभ करता है। उसे परम गुणकारी प्राणवायु पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती रहती है।

२—नित्यकर्म—मल मूत्र त्यागने से शरीर का विष नष्ट

होता है। दान्तुन करने से दांत और मुख की सफाई होती है। स्नान से शरीर स्वस्थ होता है। आलस्य का नाश होता है।

३—पूजन-भजन- पूजन से आत्मा शुद्ध होती है। जाप करने से मन की चंचलता नष्ट होती है मन एकाग्र होता है। स्तुति करने से वाणी के बिकार नष्ट होते हैं स्मरण शक्ति बढ़ती है। प्राणायाम करने से प्राणवायु शक्ति शाली होती है। शरीर के समस्त अङ्ग पुष्ट होते हैं। रक्त शुद्ध होता है। यज्ञ,आरती आदि करने से वातावरण शुद्ध होता है।

४—प्रसाद-प्रसाद को बनाते समय पूर्ण सतर्कता रखी जाती है। आहार शुद्ध रहता। उसके प्रति एक विशिष्ट श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा पूर्वक ग्रहण किया आहार शरीर को स्वस्थ्य करता है। आत्मा को बल एवं सन्तोष प्रदान करता है।

५—व्रत-प्राणी के शरीर को निरोग बनाता है। आमाशय को आराम पहुँचाता है। शरीर में एकत्रिय हुये बिष को नष्ट करता है। ऋतुओं के अनुसार व्रतों को व्यवस्था है वह इस बात की द्योतक हैं कि उनकी रूपरेखा पूर्ण वैज्ञानिक रीति के अनुसार ही निर्धारित की गई है।

६—संध्योपासना-दिन भर की महनत के कारण शरीर को स्वच्छ करना आवश्यक होता है। निदान संध्योपासना के लिये शरीर की स्वच्छता का विधान है। दीपदान आदि क्रियाएें स्वास्थ्य आदि के लिये लाभ प्रद हैं।

अगले परिच्छेद में समस्त धर्म कर्मोंकी व्याख्या की गई

है जिससे स्पष्ट होता है कि उनका प्राणी के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है।

धार्मिक कृत्य

१—रात्रि के चार प्रहर होते हैं। प्रथम प्रहर में सोने की और चौथे प्रहर में शैय्या त्यागने की व्यवस्था है। इससे स्पष्ट है कि इस नियम के अनुसार व्यक्ति को रात्रि में ६ से १० बजे तक के मध्य शयन करना चाहिये और ४ से ५ बजे तक के बीच शैय्या त्याग देनी चाहिये। प्रातःकालीन वायु प्राणदायिनी होती है। उस समय वृक्ष आक्सीजन छोड़ते हैं और नाइट्रोजन को पीते हैं। निदान उस समय की वायु से शरीर को प्राणवायु पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। अंग्रेजी में भी कहा है—

Enrly to ded and early to rise.
Makes a man healthy, wealthy and wise.

ब्राह्ममुहूर्तको देव महूर्त भी कहा जाताहै। धर्म में इसकी बड़ी महत्ता है। इसका उद्देश्य प्राणी का स्वास्थ्य बनाना है।

२—नित्य कर्म की ब्यवस्था का उद्देश्य शरीर के विष को दूर करना है। सुवह उठकर मल त्यागने के लिये वन में जाया जाये। इसका उद्देश्य है कि मल विष है जो शरीर से निकलता है और उसे वातावरण से दूर ही रखा जाये। दूर जाने से मल आसानी से निकल जाता है।

दातुन मुख को शुद्ध करती है। दाँतों को स्वच्छ और चमकदार बनाता है। आमाशय में उत्पन्न होने वाले सभी

विकारों को नष्ट करती है। बबूल, नीम, कीकर की दाँतुन का उपयोग लाभकारी होता है। धर्म ग्रंथों में उनका ही उल्लेख किया गया है।

३—स्नान शरीर के ताप को नष्ट करता है। मैल को दूर करता है। नदी का जल श्रेष्ठ होता है क्योंकि बहते रहने के कारण उसमें विष नहीं रहता। गङ्गा, यमुना, आदि सदैव बहने वाली नदियों को इसी कारण पवित्र माना जाता है। वे हिमालय पर्वत से प्रारम्भ होती हैं और धीरे २ मैदानों में बहती हैं। उनके मार्ग में वनस्पति आती हैं। उन जड़ी बूटियों के गुण उनके जल में सम्मिलित हो जाते हैं।

धर्म ग्रंथों के अनुसार नदी के बाद बड़े २ जलशयों का महत्व है। बड़े जलाशयों में सोते फूटे होते हैं इस कारण उनमें सदैव जल रहता है। आकार बड़ा होने के कारण उनमें लहरें उठती रहती हैं जिससे जल शुद्ध होता रहता है। तीसरा नम्बर कुओं का है। कुए सोत फोड़कर बनाये जाते हैं। उनका जल चल रहता है मगर वे नीचे होने के कारण प्राणवायु के निकट सम्पर्क में नहीं आते। यही कारण है कि वे नदी के समान महत्वपूर्ण नहीं होते।

धर्मानुसार स्नान से पहले शरीर पर रज मलने की व्यवस्था है। खाल चिकनी होती है। उसके ऊपर रोंए रहते हैं। इस कारण वातावरण में उड़ने वाली धूल-मिट्टी शरीर पर जम जाती है और रोंए उसे अपनी जड़ों में जमा कर लेते हैं। रज अर्थात् पीली मिट्टी को शरीर पर लेप करने से खाल के ऊपर तथा रोंए की जड़ों में जमा हुआ मैल उसके साथ चिपट जाता है। रज के कण होते हैं निदान वे पानी पड़ने पर शरीर

से अलग हो जाते हैं। शरीर पर जमा हुआ मैल जब तक अलग नहीं होता है तब तक स्नान का कोई लाभ नहीं होता है।

४—पूजन एवं आराधन की व्यवस्था आत्मा के लिये है। मनुष्य की आत्मा का प्रभाव उसके स्वभाव, कर्म एवं शरीर पर पड़ता है। पूजन और आराधन से आत्मा को शान्ति मिलती है वह परमेश्वर का भय करता है। अपने कर्मों को स्वतः ही देखता है और किंचित भी हीनता अनुभव होते ही उनमें सुधार करता है।

पूजन और आराधन की अपनी विशिष्ट क्रियाऐं होती हैं।

(अ) प्राणायाम से शरीर के अन्दर की विषाक्त वायु बाहर आती है। बाहर की प्राणवायु यथेष्ट मात्रा में प्रविष्ट होती है। शरीर के रक्त की शुद्धि होती है। स्नायुओं को शक्ति प्राप्त होती हैं। शरीर निरोग रहता है। आयु की वृद्धि होती है।

(ब) भजन करने से मन की चंचलता नष्ट होती है। मन एकाग्र होता है। इन्द्रियां नियंत्रित रहती हैं। इष्ट का ध्यान करने से आत्मा को बल मिलता है। मनकी दुर्बलता नष्ट होती है।

(स) जाप करने से वाणी के विकार नष्ट होते हैं। स्मरण शक्ति ठीक होती है। मन का सन्ताप नष्ट होता है। मन में प्रसन्नता आती है। शान्ति मिलती है और हृदय को बल मिलता है।

(ड) कीर्तन करने से फेंफड़ों की कसरता होती है। प्राणवायु का आवागमन अधिक सामान्य रीति से होता है। रक्त शुद्ध

होता है। गले की कसरत होती है। वाणी को बल मिलता है। स्वर ज्ञान प्राप्त होता है।

(इ) आसन जमा कर बैठने के लिये पद्मासन, मृत्युंजय आसन आदि प्रयोग किये जाते हैं जिनका विवरण आसन वाले प्रकरण में दिया जा चुका है।

(फ) दण्डवत प्रणाम के द्वारा शरीर की कसरत होती है।

(ज) आरती में धूप कपूर, आदि जलाने से घरका वातावरण स्वच्छ होता है। यज्ञ एवं आरती में जलाने के लिये प्रयोग की जाने वाली सभी सामिग्रियाँ कीटाणु नाशक तथा वातावरण को विष के प्रभाव से मुक्त करने वाली होती हैं।

(च)चरणामृत एवं तुलसी का प्रभाव शरीर के आरोग्य पर होता है। गङ्गाजल श्रेष्ठ जल है वह अनेकों जड़ी-बूँटी वाले स्थानों से बहकर आने के कारण बड़ा प्रभावशाली होता है। उसके पीने से शरीरका विष नष्ट होता है। तुलसी में पारा होता है। संसार का अस्तित्व पारे पर केन्द्रित है। पारा जब तुलसी के साथ मानव शरीर में प्रविष्ट होता है तो वह शरीर को आरोग्य प्रदान करता है। तुलसी का सेवन करते समय एक बात ध्यान रखने योग्य है। तुलसी को कभी दाँतों से चवाकर न खायें। तुलसी के पत्ते को हलक के ऊपर रखें और पानी के सहारे उसे सावित पेट में उतार लें। दाँतों से तुलसी पत्र चबाने पर दांत नष्ट होते हैं। उनका जड़ें हिल जाती हैं।

५—मानव कर्मशील प्राणी है कर्म उसका जीवन है। मगर कर्म की भी व्यवस्था निहित रखी है।

हर व्यक्ति को वर्ण के अनुसार कर्म करना चाहिये। वर्ण व्यवस्था का मूल आधार समाज एवं राष्ट्रके लिये उपयोगी होना है। वर्ण के अनुसार कार्य करने से प्राणी को किसी प्रकार की झिझक या मनमें संताप नहीं होता है।

वर्ण व्यवस्था के अनुसार ही प्राणी को शारीरिक शक्ति एवं बिकास की आवश्यकता होती है । ब्राह्मण की मस्तिष्क शक्ति प्रखर होनी चाहिये। क्षत्रिय के बाहुओं में बल की आवश्यकता होती है। वैश्य श्रमणशील होता है। उसके पैरों की शक्ति अधिक होनी चाहिये। शूद्र समाज का सेनक है उसका शरीर पुष्ट होना आवश्यक धर्माचरण करने वाले सभी प्राणी अपने कर्त्तव्य का ध्यान करके जब आचरण करते हैं तो उनके शरीर उसी प्रकार से संगठित हो जाते हैं। कर्म का स्वास्थ्य पर अवश्य प्रभाव होता है।

धर्माचरण के लिये निम्नबातों का ध्यान रखना जरूरी है—

१. सत्य—सत्य बोलने से आत्मा प्रबल रहती है। आत्मा जब शान्त रहती है तो उसका प्रभाव शरीर पर अच्छा होता है।

२. धर्मानुराग—जब प्राणी धर्म में अनुराग रखता है तो उसे भय रहता है। वह कभी ऐसा कोई कार्य नहीं करता जो समाज के विपरीत हो। जब तक समाज के सभी व्यक्ति अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान रहते हैं तब तक समाज की मर्य्यादा पूरी तरह अक्षुण रहती है। जब व्यक्तियों के मनमें नवीन भ्रान्तियं अथवा धाराऐं उत्पन्न हो जाती हैं तो उनको

क्लेश होता ह। उनके इस कृत्य का प्रभाव निश्चय ही पूर्ण समाज पर पड़ता है। समाज का वातावरण दूषित हो जाता है। उस व्यक्ति की आत्मा मलिन हो जाती है। उसका शरीर उसकी आत्मा के साथ ही गिरता जाता है।

लोभी का शरीर या तो कृश अथवा स्थूल हो जाता है। शरीर का भारी होना स्वास्थ्य का द्योतक नहीं है। स्वस्थ्य वह है जो निश्चित रूप से विचार, कर्म और विश्राम करने की शक्ति रखता है। आलस्य शरीर का महान शत्रु है। जहाँ तक सम्भव हो इस शत्रु से सदैव अपनी रक्षा करनी चाहिये। यह जभी सम्भव हो सकता है जब शरीर में फुर्ती बनी रहे। फुर्ती बनाये रखने के लिये उचित स्त्रोत की आवश्यकता होती है। धर्म के प्रवंतकों ने इसी कारण मानव के लिये धर्म क्रियाओं की रूप रेखा रखी है ताकि उसका पालन करने से मनुष्य क्रियाशील बना रहे उसके शरीर में आलस्य का उदय न हो।

सभी धर्मों ने अपने उद्गम स्थान के अनुसार दिनचर्या की रेखा बनाई है। जैसे—:

ईसाई धर्म——इतवार अर्थात् रविवार को स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करके गिरजे में सुवह जायें। प्रातः उठते समय और रात को सोते समय प्रभु से प्रार्थना करें। वहां शीत का प्रकोप रहता है इस कारण उन्होंने स्नान आदि पर बल नहीं दिया है।

मुसलमान धर्म——शुक्रवार को तथा विशेष पर्वों पर

नहाकर स्वच्छ वस्त्र पहनकर नमाज पढ़ने बड़ी मस्जिद में जायें। दिन में पांच बार हाथ पैर धोकर नमाज पढ़ें। अरब में पानी की कमी है यही कारण है कि उन्होंने नित्य स्नान करने की आवश्यकता पर वल नहीं दिया।

हिन्दू धर्म—क्योंकि इस धर्म की स्थापना भारत में हुई जहाँ की जलवायु शीतोष्ण है। यहाँ जल की कमी कभी नहीं रहती। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में स्नान पर महत्व है। प्रातः स्नान करने की व्यवस्था है। पूजन-आराधन का नित्य विधान । र्व एवं उत्सवों पर विशेष व्यवस्था है।

शरीर जब तक समताप से युक्त रहता है तब तक वीर्य में को भी वकार उत्पन्न नहीं होता है। मगर जब शरीर में ताप ढ़ जाता है तो वीर्य पतला हो जाता है और बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ता है। वीर्य विकार ही शरीर को नष्ट करता है। वीर्य की रक्षा ही ब्रह्मचर्य पालन क्रिया कहलाती है।

३. भोजन—धर्म वक्ताओं का मत है कि भोजन की आवश्यकता शरीर को जीवित रखने के लिये है। हम जीवित रहना चाहते हैं इसलिये भोजन करते हैं। आधुनिक धारणा है कि हम भोजन करने के लिये ही जीवित रहना चाहते हैं। इन दोनों धारणाओं में जमीन आसमान का फर्क है। पहली धारणा में जीवन का महत्व है भोजन गौण है। दूसरी धारणा में भोजन का महत्व है शरीर गौण है।

सोचने की बात यह है कि मानव जीवन का उद्देश्य भोजन प्राप्त करना ही नहीं है। भोजन की आवश्यकता शरीर

की रक्षा के लिये जरूरी है यही कारण है कि धर्म में भोजन की महत्ता को विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है।

धर्म के अनुसार भोजन-वे भक्ष्य पदार्थ हैं जिनको प्राणी मुख्यतः प्रकृति से प्राप्त करता है। प्राकृतिक पदार्थों की गणना श्रेष्ठतम भोजन में की जाती है—जैसे—

फल कन्द,-मूल।

दूस श्रेणी के पदार्थ वे हैं जिनको उपयोग में लाने के लिये मनुष्य ा थोड़ा सा परिश्रम करना होता है, जैसे—

दूध, अन्न, साग-भाजी।

तीसरी श्रेणी के पदार्थ वे हैं जिनको आहार बनाने के लिये मनुष्य को अन्य जीवों की हत्या करनी पड़ती है। जैसे—

मास, मछली, सराव।

अपने उपयुक्त स्वभावों के कारण हा इन तीनों प्रकार के भोजनों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है। वे कहलाते हैं—

सात्विक—फल, कन्दमूल शरीर को जीवित रखें।

राजसी—चिकने पदार्थ जो शरीर को पुष्ट करें।

तामसी—जो शरीर को मोटा-तगड़ा बनायें और स्वभाव उग्र करें।

इन आहारों के ग्रहण करने से शरीर पर उसी प्रकार का प्रभाव होता है जैसा भोजन ग्रहण किया जाता है। ब्रह्मचारी को सदैव सात्विक तत्वों से युक्त भोजन ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करने से प्राणी की बुद्धि निर्मल रहती है। शरीर में ताप सम रहता और उसके ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है।

धर्म वेक्ताओं ने भोजन पर विशेष जोर दिया है। प्रभु अथवा आराध्य का भोग लगाने के लिये सात्विक सामिग्री रखी गयी है। उन सबका तात्पर्य यही है कि जहाँ तक सम्भव हो प्राणी उन्हीं सामिग्रियों का सेवन करे जो उसके शरीर को जीवित रखने में सहायक हों एवं उसके शरीर के ताप को सही दशा में बनाये रखें।

वैदिक धर्म में आहार को अधिक महत्व दिया गया है। धर्म की मर्यादा का पालन करने वाला भगवत् प्रसाद ग्रहण करना सौभाग्य मानता है प्रभु का प्रसाद परम सात्विक है। वर्तमान समय नाना प्रकार के इन सम्प्रदायों ने धर्म की मर्यादा को नष्ट कर दिया। प्रभुके प्रसाद में मिष्ठान आदि का समावेश करके उन्होंने उसे राजसी बना दिया है। वास्तव में देखा जाये तो प्रभु का प्रसाद परम सात्विक होता है।

धर्म के अनुसार व्रत आदि की ऐसी व्यवस्था रखी गयी है कि प्राणी को स्वास्थ्य लाभ होता है। एकादशी, प्रदोष, अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्थी आदि व्रत प्रत्येक मास में होते हैं और उनके सेवन से प्राणी के शरीर का समस्त विष नष्ट हो जाता है और वह आरोग्य लाभ करता है। समय-समय पर उत्सवों और त्यौहारों पर व्रतों की व्यवस्था है। ऋतु के अनुसार ही व्रतों का विधान है।

ऋतु परिवर्तनों के समय अधिकतर रोग पेट की खराबी से फैलते हैं। कठोर गर्मी और भीषण वर्षा में रोग पनपते हैं। भीषण गर्मी और वर्षा ऋतु में ही अधिकांश व्रत होते हैं।

किसी भी धार्मिक कृत्य के लिये व्रत करना आवश्यक

होता है। यहां तक कि साधारण कथा के लिये भी व्रत करना होता है। व्रत का विधान इसी कारण है कि प्राणी का स्वास्थ्य स्वच्छ रहे।

४–व्रत ना महत्व और उसका सही विधान

मानव का पेट एक चक्की के समान है। प्राणी जो आहार ग्रहण करता है वह तुरन्त जाकर नहीं पचता। थोड़ा-थोड़ा आहार आँतों में पहुँचता है और वहां उसका रस बनता हैं। श्रेष्ठ रस मानव की रक्त नलिकाओं में पहुंचता है और जो फोक बच जाता है वह गुदामार्ग से बाहर निकल जाता है। उसे मल कहते हैं।

जिस प्रकार चक्की में सदैव कौर पड़ा रहता है उसी प्रकार मनुष्य के पेट में भी आहार बना रहता है। ये आहार धीरे-धीरे पचता रहता है। जैसे ही मानव पुनः भोजन करता है वैसे ही पेट का काम बढ़ जाता है। उसे नये आहार को पचाना होता है। सदैब आँतड़ियों में रहने वाला आहार चक्की के कौर के समान होता है। इसे यदि इसी प्रकार पेट में रहने दिया जाये तो वह धीरे-धीरे विष हो जाता है।

इस आहार रूपी कौर को व्यवस्थित रखने के लिये ही व्रत का विधान है। व्रत में आहार पेट में नहीं जाता और आमाशय इस कौर को ही मथता है। उसमें से रस निकाल लेने के बाद अवशेष को फेंक देता है।

धर्म वेत्ताओं का मत है कि व्रत का निश्चय एक दिन पूर्व करना ही उचित हैं। ऐसा करने से आत्मा में एक बल उत्पन्न

हो जाता है। आत्मा के बल के अनुसार व्रत की साधना प्रारम्भ होती है। व्रत करने से शरीर में एक शक्ति आती है।

व्रत करने का अर्थ है आहार त्याग देना। उसका यह अर्थ तदापि नहीं है कि दैनिक कर्मों को भी त्याग दिया जाये। शरीर को कर्तव्य शील रखना चाहिये। ऐसा करने से शरीर में अलौकिक ज्योति आती है। आहार न करने से आमाशय पर भार नहीं रहता। वहां जितना भी शेष आहार होता है वही पचता रहता है।

व्रत समाप्ति करने पर कभी गरिष्ट या भारी भोजन नहीं करना चाहिये। व्रत के बाद हमेशा सबसे पहले जल या अन्य तरल पदार्थ का सेवन करें। जल में नीबू का रस मिलाकर पीना श्रेष्ठ है। नीबू के रस में मिला जल स्वतः एक टॉनिक है। उसे पीने से आमाशय में रहनेवाला अम्ल पतला बना रहता है। पाचक रस सक्रिय रहता है।

आहार के लिये फल, दूध आदि शीघ्र पचने वाले पदार्थ ही ग्रहण करने चाहिये। य द आहार में गरिष्ठ भोजन लिया जाये तो आंतों पर बुरा असर पड़ता है। व्रत के कारण आमाशय को आराम रहता है। यदि व्रत खोलते ही गरिष्ठ आहार पेट में पहुँचता हैं तो आंतड़ियों को कड़ी महनत करनी पड़ती है। उससे उनमें विकार होता है।

व्रत करने वाले को चाहिये—

१—एक दिन पहले ही व्रत का निश्चय करे।

२—व्रत के दिन बिलकुल आलस्य न करे। मन में यह

भ्रान्ति भी उत्पन्न न होने दे कि उसने आहार ग्रहण नहीं किया है।

३—व्रत खोलते समय सर्व प्रथम नीबू का रस मिला जल ग्रहण करे अथवा पाचक फलों का रस पीवे।

४—आहार में जहाँ तक सम्भव हो फल एवं दूध ही ग्रहण करे। तले हुये पदार्थ सेवन न करे।

५—रात्रि को शयन करने से पहले हाथ-पैर धो डाले ताकि शरीर का ताप सन्तुलित रहे।

६. कर्म—मानव के जीवन का उद्देश्य कर्मशील बना रहना है कर्म ही जीवन है। कर्म करने के लिये ही मानव का जन्म होता है। वास्तव में कर्म ही मनुष्य का जीवन है और उसके भाग्य का विधाता है कर्म करने से पहले उसकी रूपरेखा को काफी सावधानी के साथ समझ लेना जरूरी होता है।

मन और आत्मा जिस शारीरिक एवं मस्तिष्क सम्बन्धी परिश्रम को करने में सुख की अनुभूति पाते हैं। उसे कर्म कहते हैं। कर्म की अपनी निजी मर्यादा होती है। उसके कुछ अपने उद्देश्य होते हैं।

जैसे—(१) आजीविका की प्राप्ति
(२) मानसिक एवं सुख की प्राप्ति
(३) धन की प्राप्ति
(४) राष्ट्र की रक्षा, समाज की रक्षा
(५) धर्म स्थापना एवं रक्षा।

कर्म का महत्वपूर्ण उद्देश्य सर्व साधारण के लिये आजीविका की प्राप्ति है। कर्म करने से प्राणी को धन प्राप्त होता है और

धन के द्वारा उसके परिवार का भरण-पोषण होता है। पारिवारिक भरण-पोषण के लिये जिस द्रव्य को प्राप्त किया जाये वह निम्न गुणों से युक्त होना चाहिये—

(१) शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम द्वारा उपार्जित।

(२) उचित साधनों से उपार्जित—नौकरी, व्यापार आदि से उपार्जित होना चाहिये। चोरी, जुए, डकैती, लूट, आदि दुष्कर्मों से उपार्जित धन को इस श्रेण में नहीं रखा जाता।

(३) भ्रष्टाचार, रिश्वत, ब्लैक आदि से प्राप्त धन को इस श्रेणी में नहीं रखा जाता है।

कर्म का उद्देश्य मानव के हित, उसके परिवार के हित में होना जरूरी है साथ ही उसको समाज एवं राष्ट्र के हित में भी होना चाहिये। कर्म करते समय प्राणी को उसमें मानसिक सन्तोष प्राप्त होना चाहिये। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उसे अन्य प्राणियों का अहित नहीं करना चाहिये।

कर्म का प्रभाव आत्मा पर होता है। जो हिंसा के द्वारा अपनी आजीविका ग्रहण करता है उसका हृदय पत्थर की तरह कठोर होता है। उसमें दया का अभाव होता है। उसकी आत्मा उसके कर्म के कारण दुर्बल हो जाती है। उसे अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता और वह कर्म के द्वारा दिन प्रति दिन कठोर होता जाता है।

कठोर हृदय वाला प्राणी समाज के लिये उपयोगी नहीं होता। हिंसा समस्त अवगुणों की जननी है। हिंसा से समस्त दुर्गुण जन्म लेते हैं और उससे समाज में दुष्टता फैलती है। यही कारण है कि सनातन काल में चाण्डाल को नगर अथवा ग्राम से बाहर रखा जाता था। उसे समाज में सामान्य स्थान प्राप्त नहीं था।

आज की परिस्थिति में यह आवश्यक है कि समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिये और देश का नव निर्माण करने के लिए समाज के प्राणियों की मीमाँसा करते हुए उनको उनके निश्चित कर्म का ध्यान दिलाया जाये। ऐसा करने से समाज में चेतना होगी। देश एवं जाति का कल्याण होगा। जन मानस की अविब्यवस्था नष्ट होगी।

ब्रह्मचर्य धारण करने वालों को कर्म के प्रति विशेष रूप से सजग रहना चाहिये। कर्म से च्युत होने पर ब्रह्मचर्य खण्डित होता है। कर्म की मर्यादा पर बने रहने से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है और जन मानस में ज्योति आती है।

कहने का साराँश है कि हमारा सनातन हिन्दू धर्म ब्रह्मचर्य के महत्व से पूरी तरह परिचित था और उनके द्वारा जिस मानव धर्म की स्थापना हुई उसमें ब्रह्मचर्य को यथेष्ठ महत्व दिया गया। समय एवं समाज की फेर बदल से हम अपने धर्म की महत्ता समझ सकने में असमर्थ रहे हैं और उसका ही प्रभाव है कि हम ब्रह्मचर्य से च्युत हो गये हैं। यह हमारा हमारे देश, हमारी समाज और हमारी आने वाली पीड़ियों का दुर्भाग्य है।

यदि हम वास्तव में स्वस्थ मानव, स्वस्थ संगठित जाति, सुव्यवस्थित समाज और गौरवशाली राष्ट्र के हिमायती हैं तो हमें चाहिये कि हम ब्रह्मचर्य का पालन करें और ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन करते हुये अपने राष्ट्र, समाज, जाति का गौरव बढ़ाये।

॥ समाप्त ॥

मुद्रक—बाबू सोहनलाल गुप्ता, हिन्दी पुस्तकालय प्रेस, मथुरा।

हमारे प्रमुख प्रकाशन–

	मूल्य रु.न.पै.
१–हिन्दी अंग्रेजी मास्टर	६.००
२–चौदह विद्या चौंसठ कला	२.५०
३–वेतन तालिका	२.५०
४–कम्पाउण्डरी शिक्षा	३.२५
५–साबुन तेल शिक्षा	१.५०
६–मोटर गाइड	५.००
७–बिजली सुपरवाईजर	५.२५
८–खेती बागवानी	३.००
९–इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिङ्ग	५.००
१०–इञ्जैक्शन गाइड	५.००
११–ट्रैक्टर गाइड	४.००
१२–खराद शिक्षा	३.००